केनोपनिषत्

(तत्त्वविवेचनी हिन्दीव्याख्या)

स्वामी त्रिभुवन दास

केनोपनिषद्-रङ्गरामानुजभाष्यम्

KENOPANISAD-RANGARAMANUJABHASHYAM

।।श्री:।।

व्रजजीवन प्राच्यभारती ग्रन्थमाला
१९२

केनोपनिषद्-रङ्गरामानुजभाष्यम्

(ज्ञानगङ्गा हिन्दीव्याख्यासहित)

व्याख्याकार
स्वामी त्रिभुवनदास

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान
दिल्ली

केनोपनिषद्-रङ्गरामानुजभाष्यम्

प्रकाशक
चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान
(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)
38 यू. ए. जवाहर नगर, बंगलो रोड
पो. बा. नं. 2113, दिल्ली - 110007
दूरभाष : (011) 23856391, 41530902

प्रथम संस्करण 2016
पृष्ठ : XX+68
मूल्य : ₹ 60.00

अन्य प्राप्तिस्थान :

चौखम्बा विद्याभवन
चौक (बैंक ऑफ बड़ौदा भवन के पीछे)
पो. बा. नं. 1069
वाराणसी - 221001

❖

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
के. 37/117 गोपाल मन्दिर लेन
पो. बा. नं. 1129
वाराणसी - 221001

❖

चौखम्बा पब्लिशिंग हाउस
4697/2, भू-तल (ग्राउण्ड फ्लोर)
गली नं. 21-ए, अंसारी रोड़
दरियागंज, नई दिल्ली - 110002

ISBN : 978-81-7084-691-4

सम्पादन सहयोग - रुद्रनारायणदास

मुद्रक :
ए. के. लिथोग्राफर्स, दिल्ली

THE

VRAJAJIVAN PRACHYABHARATI GRANTHAMALA

192

KENOPANISAD-
RANGARAMANUJABHASHYAM

with Jnanaganga Hindi Commentary

by

Swami Tribhuvanadass

CHAUKHAMBA SANSKRIT PRATISHTHAN

DELHI

Kenopanisad-Rangaramanujabhashyam

Publishers :
CHAUKHAMBA SANSKRIT PRATISHTHAN
38 U. A., Bungalow Road, Jawahar Nagar
Post Box No. 2113
Delhi 110007
Phone : (011) 23856391, 41530902
E-mail : cspdel.sales@gmail.com
Website : www.chaukhambabooks.in

First Edition : 2016
Pages : XX+68
Price : ₹ 60.00

Also can be bad from :
CHOWKHAMBA VIDYABHAWAN
Chowk (Behind The Bank of Baroda Building)
Post Box No. 1069
Varanasi 221001

CHAUKHAMBA SURBHARATI PRAKASHAN
K. 37/117 Gopal Mandir Lane
Post Box No. 1129
Varanasi 221001

CHAUKHAMBA PUBLISHING HOUSE
4697/2, Ground Floor, Street No. 21-A
Ansari Road, Darya Ganj
New Delhi 110002

ISBN : 978-81-7084-691-4

Editorial Assistance - Rudranarayandass

Printed by :
A. K. Lithographers, Delhi

आत्मनिवेदन

उपनिषदों की तत्त्वविवेचनी व्याख्यामाला का पञ्चम प्रसून मुण्डकोपनिषद्-व्याख्या के प्रणयन के पश्चात् केनोपनिषद्-रङ्गरामानुजभाष्य के अध्यापनकाल में छात्रों के अनुरोध से इसका व्याख्यालेखन हुआ।। मैंने व्याकरण तथा वेदान्त के अप्रतिम विद्वान् पण्डित **श्रीरामवदनजी शुक्ल** और वीतराग-परमहंस, दार्शनिक सार्वभौम **स्वामी शंकरानन्द सरस्वतीजी** से विशिष्टाद्वैत वेदान्त का अध्ययन किया था। पूज्य गुरुदेव अनन्तश्रीविभूषित ब्रह्मविद्वरिष्ठ महान्त **श्रीस्वामी नृत्यगोपालदासजी महाराज** के अहेतुक अनुग्रह से दास का शास्त्राध्ययन हुआ। पूज्य गुरुदेव और अनन्तश्रीविभूषित भक्तिशास्त्रमर्मज्ञ श्रीमद्भागवतप्रवक्ता श्रीमलूकपीठाधीश्वर **श्रीराजेन्द्रदासजी** महाराज ये दोनों महापुरुष मेरे स्वाध्याय और लेखनकार्य के प्रेरणास्रोत हैं। इन सभी महात्माओं के पावन पादपद्मों में अनन्त प्रणति समर्पित हैं।

श्रीरामशरणदास (श्रीरामानन्दाचार्यसेवापीठ चतरा, वराहक्षेत्र, नेपाल) और **गोपाल दासजी**(श्रीकृष्णकुञ्ज, मायाकुण्ड ऋषीकेश)ने अक्षरशुद्धिनिरीक्षण तथा **श्रीरुद्रनारायणदास** (स्वामी रामानन्दाश्रम मायाकुण्ड ऋषीकेश) ने सम्पादनकार्य सम्पन्न किया है, इन सभीके परिश्रम के परिणामस्वरूप प्रस्तुत ग्रन्थ उपनिषत्प्रेमी पाठकों के हाथों में प्रस्तुत है।

माघकृष्ण एकादशी
वि.सं.2072

स्वामी त्रिभुवनदास
मङ्गलम् कुटीरम्,
गङ्गालाइन,स्वर्गाश्रम (ऋषीकेश),
उत्तराखण्ड, पिन-249304,

शुभ-आशीर्वाद

श्रीराम

भगवत्कृपा से श्रीत्रिभुवनदासजी शास्त्री लगनशील, कर्मठ, त्यागी-तपस्वी एवं विद्वान् सन्त हैं। तपःस्वाध्याय इनके जीवन का लक्ष्य है। ये उपनिषदों के श्रीरङ्गरामानुजभाष्य की विशद व्याख्या का अभूतपूर्व कार्य कर रहे हैं। इनके सराहनीय कार्यों के लिए आशीर्वाद दिया जाता है। ये भविष्य में भी इसी प्रकार साहित्य धर्म की सेवा करते रहेंगे, इसके लिए मंगलकामना की जाती है।

महान्त नृत्यगोपाल दास
श्रीमणिरामदास छावनी
अयोध्या (उ.प्र.)

शुभ-सम्मति

श्रीमते रामानन्दाचार्याय नमः

असंख्येयकल्याणगुणगणनिलय, निखिलहेयप्रत्यनीक, शरणागतवत्सल, भक्तवत्सल, चिदचिन्नियामक श्रीसीतासर्वेश्वर प्रभु श्रीरामजी की कृपा से विद्वद्वरेण्य, तपःस्वाध्यायनिरत, परमादरणीय स्वामी श्रीत्रिभुवनदासजी की दिव्यतम कृति विशिष्टाद्वैत वेदान्त का विस्तृत विवेचन नामक ग्रन्थ साधक- सुधीजनों के करकमलों में सुशोभित हुआ। तत्पश्चात् ईश, केन, कठ, प्रश्न एवं मुण्डकोपनिषत् की विशिष्टाद्वैतपरक व्याख्याएं हस्तगत हुई। अब केनोपनिषत् के रङ्गरामानुजभाष्य की आपश्री के द्वारा लिखित सरल हिन्दी व्याख्या प्रकाशित होने जा रही है, यह महान् हर्ष का विषय है।

केनोपनिषद् में **ॐ केनेषितं पतति मनः केन प्राणः प्रथमः प्रैति युक्तः। केनोषितां वाचमिमां वदन्ति चक्षुः श्रोत्रं क उ देवो युनक्ति॥** इस मन्त्र से ब्रह्मविषयक जिज्ञासा आरम्भ होती है। अन्तरिन्द्रिय एव बहिरिन्द्रियों का प्रेरक तत्त्व कौन है? इस का उत्तर पर ब्रह्म के स्वरूप और महिमा के प्रतिपादक मन्त्रों के द्वारा दिया गया तथा ब्रह्मविषयक बोध न होने को अत्यन्त निन्दित बताया गया। **इह चेदवदीथ सत्यमस्ति न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः। भूतेषु भूतेषु विचित्यधीराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवति** अर्थात् यदि वर्तमान मानव जीवन में परम सत्य भगवान् को जान लिया तब तो कुशल है और यदि वर्तमान जीवन में न जान पाये तो इस से बड़ा विनाश और कोई नहीं। सर्वान्तर्यामी के रूप में परब्रह्म को जानने वाला भगवान् के

नित्य धाम को प्राप्तकर अमृत स्वरूप हो जाता है।

भगवान् श्री सीतारामजी महाराज के चरणों में साष्टाङ्ग प्रणतिपूर्वक प्रार्थना करते हैं कि हमारे अत्यन्त आत्मीय आदरणीय स्वामी त्रिभुवन दास जी को अपने चरणों में विमलानुराग प्रदान करते हुए नैरुज्यदीर्घायुष्य प्रदान कर इसी प्रकार सत्साहित्य सृजन के माध्यम से साधक जगत् का परमहित सम्पादित कराते रहें।

दासानुदास

राजेन्द्रदास

व्याकरणवेदान्तसाहित्याचार्य

मलूकपीठ, वंशीवट, वृन्दावन

सम्पादकीय

केनोपनिषत्-रङ्गरामानुजभाष्य की व्याख्या आप जैसे प्रबुद्ध पाठकों के करकमलों में समर्पित है। इसमें मन्त्र के पश्चात् अन्वय और मन्त्र के पदों का अर्थ प्रस्तुत है, जिस से सामान्य पाठकों को भी मन्त्रार्थ अत्यन्त सरलता से हृदयंगम हो सके। इसके पश्चात् अद्यावधिपर्यन्त उपलब्ध उपनिषद्भाष्यों में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण रङ्गरामानुजभाष्य तथा उसकी गम्भीर, विस्तृत और हृदयस्पर्शी व्याख्या सन्निविष्ट है। विषयवस्तु को अवगत कराने के लिए इसे यथोचित शीर्षकों से सुसज्जित किया गया है। इसके अध्ययन से विषय अनायास ही हृदयपटलपर अंकित होता चला जाता है, पाठकगण इसका स्वयं अनुभव करेंगे। मन्त्र के यथाश्रुत अर्थ का बोध कराना ही हमारे व्याख्याकार स्वामीजी को अभीष्ट है, फिर भी कुछ स्थलों में अन्य मतों की संक्षिप्त समालोचना हुई है, जो कि प्रासङ्गिक है। ग्रन्थके अन्तमें परिशिष्ट भी दिये गये हैं, जिससे यह ग्रन्थ शोधकर्ताओं के लिए भी संग्राह्य हो गया है। हमारा विश्वास है कि हिन्दी माध्यम से उपनिषदों के अध्येता इस ग्रन्थ रत्नका आदर करेंगे।

प्रस्तावना

वेदों के सारभाग को वेदान्त कहा जाता है- **वेदानामन्तः सारभागः वेदान्तः**, उसे ही उपनिषत् कहते हैं। श्रुतप्रकाशिकाकार आचार्य सुदर्शन सूरि के अनुसार परमात्मा का साक्षात् प्रतिपादक वेदभाग उपनिषत्[1] कहलाता है-**अद्वारकभगवत्प्रतिपादकत्वम् उपनिषण्णत्वम्।** भगवान् श्रीकृष्ण ने भगवद्गीता में **अध्यात्मविद्या विद्यानाम्** (गी.10. 32) इस प्रकार उपनिषत् को अपनी विभूति निरुपित करके उसकी सर्वोत्कृष्टता सिद्ध की है। महर्षि कृष्णद्वैपायन व्यास ने उपनिषदों का सारभूत अर्थ ग्रहण करके वेदान्तसूत्रों की रचना की और उनके ही शिष्य आचार्य बोधायन तथा ब्रह्मनन्दि, द्रमिडाचार्य आदि विद्वानों ने अनेक ग्रन्थों का प्रणयन किया। परवर्तीकाल में कुछ विद्वानों ने श्रुति, सूत्र और उनके व्याख्याकार उक्त आचार्यों के द्वारा सन्दर्शित रीति में कण्टकप्रक्षेप कर सम्प्रदायपरम्परा से प्राप्त श्रुतिस्मृति- इतिहासपुराणसम्मत सविशेषाद्वैतसिद्धान्तानुसारी प्राचीन आर्ष व्याख्याओं का अनादर और निराकरण करके उनके प्रचार पथ में बाधा उपस्थित की। उत्तरकालिक आचार्यों के द्वारा प्रणीत व्याख्याओं में बौद्धसिद्धान्तसम्मत विषय भी मिश्रित होने से वे सम्प्रदायनिष्ठ वैदिक विद्वानों के द्वारा अग्राह्य हुई अतः आर्ष व्याख्याओं का पुनः उद्धार करने के इच्छुक करुणामूर्ति स्वामी रामानुजाचार्य ने 'वेदार्थसंग्रह' की रचना की। उसमें उन उपनिषद्मन्त्रों का प्रधानता से विश्लेषण करके व्याख्या की गयी है, जिनके आधार पर सभी आचार्य अपने सिद्धान्त की स्थापना करते हैं और इसमें अन्य

टिप्पणी- 1.उपनिषत् शब्द का विस्तृत विवेचन ईशावास्योपनिषत् की तत्त्वविवेचनी व्याख्या में देखना चाहिए।

उपनिषद्मन्त्रों के अर्थनिर्देश की पद्धति का प्रशस्त राजपथ भी प्रदर्शित है। उन्होंने श्रीभाष्य में भी पूर्वोत्तर प्रसङ्गों के विचारपूर्वक उपनिषद्मन्त्रों की व्याख्या करके अपव्याख्याओं का सप्रमाण खण्डन किया। इन्हीं का अनुसरण करके श्रीसुदर्शनसूरि ने सुबालोपनिषत् का भाष्य तथा श्रीवेंकटनाथ वेदान्तदेशिकस्वामी ने ईशावास्योपनिषत् के भाष्य की रचना की। आचार्य श्रीरङ्गरामानुजमुनि ने केनादि अन्य सभी उपनिषदों पर भाष्य की रचना की। इनका जन्म तिरुपति में सन1670 ई. में हुआ था। इनके विद्यागुरु श्रीवात्स्य अनन्ताचार्य, परमगुरु श्रीताताचार्य और संन्यासदीक्षागुरु श्रीपरकालमुनि थे। ये ब्रह्मचर्य आश्रम से ही संन्यास लेकर काञ्चीपुरम् में निवास करके ग्रन्थनिर्माणकार्य में संलग्न रहने वाले विरक्त महात्मा थे। इनका देहावसानकाल सन 1750 ई. है। ये दशोपनिषद्भाष्यकार और चतुष्षष्ठिप्रबन्धनिर्माता के रूप में प्रसिद्ध हैं। इनके रचित 1. केन 2. कठ 3. प्रश्न 4. मुण्डक 5. माण्डूक्य 6. तैत्तिरीय, 7. ऐतरेय 8. छान्दोग्य 9. बृहदारण्यक 10. मन्त्रिक 11. अथर्वशिखा 12. कौषीतकी 13. श्वेताश्वतर और 14. अग्निरहस्य उपनिषत् के भाष्य 15. श्रीभाष्यव्याख्या मूलभावप्रकाशिका 16. श्रुतप्रकाशिकाव्याख्या भावप्रकाशिका 17. शारीरकशास्त्रार्थदीपिका 18. विषयवाक्यदीपिका 19. न्यायसिद्धाञ्जनटीका 20. तिरुप्पलाण्डु 21. तिरुप्पावै 22. तिरुवायमोलि ये ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं तथा 1. महोपनिषद्भाष्यम् 2. पुरुषसूक्तभाष्यम् 3. रामानुजसिद्धान्तसारसंग्रहः 4. तत्त्वनिष्कर्षः 5. रहस्यत्रयसारव्याख्या 6. तात्पर्यकौमुदी 7. प्रतितन्त्रपरिष्क्रिया 8. ईशावास्यभावदीपिका ये ग्रन्थ अभी अप्रकाशित हैं[1]। केनोपनिषत्-रङ्गरामानुजभाष्य के अर्थ को विवृत

1, आधारग्रन्थाः-

(क) केनाद्युपनिषद्भाष्यम् उत्तमूरवीर राघवाचार्यसम्पामदतम् मद्रास 2003

(ख) केनोपनिषत् व्याख्याचतुष्ठयोपेता मेलुकोठे 1986

करने वाली उत्तम हिन्दी व्याख्या उपलब्ध न होने से छात्रों के अनुरोध से भाष्य के अध्यापनकाल में भगवान् श्रीसीतारामचन्द्र के असीम अनुग्रह से इसका व्याख्यालेखन सम्पन्न हुआ।

स्वामी त्रिभुवनदास
मंगलम् कुटीरम् गंगा लाइन
स्वर्गाश्रम, ऋषीकेश
उत्तराखण्ड
पिन 249304
चलवाणी- 8057825137 (8 से 9 रात्रि)

विषयानुक्रमणिका

केनोपनिषत्

मूलपाठः

शान्तिमन्त्रः

ॐ आप्यायन्तु ममाङ्गानि वाक्प्राणश्चक्षु:श्रोत्रमथो बलमिन्द्रियाणि च सर्वाणि।
सर्वं ब्रह्मौपनिषदम् । माहं ब्रह्म निराकुर्याम्।
मा मा ब्रह्म निराकरोत्। अनिराकरणमस्तु। अनिराकरणं मेऽस्तु।
तदात्मनि निरते य उपनिषत्सु धर्मास्ते मयि सन्तु। ते मयि सन्तु।।
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।।

प्रथमः खण्डः

केनेषितं पतति प्रेषितं मनः केन प्राणः प्रथमः प्रैति युक्तः।
केनेषितां वाचमिमां वदन्ति चक्षु:श्रोत्रं क उ देवो युनक्ति।। 1 ।।
श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो मनो यत् वाचो ह वाचं स उ प्राणस्य प्राणः।
चक्षुषश्चक्षुरतिमुच्य धीराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति।। 2 ।।
न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति नो मनः।
न विद्मो न विजानीमो यथैतदनुशिष्यात् ।। 3 ।।
अन्यदेव तद् विदितादथो अविदितादधि
इति शुश्रुम पूर्वेषां ये नस्तद् व्याचचक्षिरे।। 4 ।।
यद् वाचाऽनभ्युदितं येन वागभ्युद्यते।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ।। 5 ।।
यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतम्।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते।। 6 ।।
यच्चक्षुषा न पश्यति येन चक्षूंषि पश्यति।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते।। 7।।

यत् श्रोत्रेण न शृणोति येन श्रोत्रमिदं श्रुतम्।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ।। 8 ।।
यत्प्राणेन न प्राणिति येन प्राणः प्रणीयते।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते।। 9 ।।
।। इति प्रथमः खण्डः।।

द्वितीयः खण्डः

यदि मन्यसे सुवेदेति दभ्रमेवापि नूनं त्वं वेत्थ ब्रह्मणो रूपम्।
यदस्य त्वं यदस्य देवेषु अथ नु मीमांस्यमेव ते मन्ये विदितम्।। 1 ।।
नाहं मन्ये सुवेदेति नो न वेदेति वेद च।
यो नस्तद्वेद तद्वेद नो न वेदेति वेद च।। 2।।
यस्याऽमतं तस्य मतं मतं यस्य न वेद सः।
अविज्ञातं विजानतां विज्ञातमविजानताम्।। 3 ।।
प्रतिबोधविदितम् अमृतम् अमृतत्वं हि विन्दते।
आत्मना विन्दते वीर्यं विद्यया विन्दतेऽमृतम्।। 4 ।।
इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः
भूतेषु भूतेषु विचित्य धीराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति।। 5 ।।
।। इति द्वितीयः खण्डः।।

तृतीयः खण्डः

ब्रह्म ह देवेभ्यो विजिग्ये।
तस्य ह ब्रह्मणो विजये देवा अमहीयन्त।
त ऐक्षन्त, अस्माकमेवायं विजयोऽस्माकमेवायं महिमेति।। 1 ।।
तद्धैषां विजज्ञौ। तेभ्यो ह प्रादुर्बभूव।
तन्न व्यजानत किमिदं यक्षमिति।। 2 ।।

तेऽग्निमब्रुवन्, जातवेदः एतद् विजानीहि,
किमेतद् यक्षमिति, तथेति।। 3 ।।
तदभ्यद्रवत् तमभ्यवदत्, कोऽसीति?
अग्निर्वा अहमस्मीत्यब्रवीत्, जातवेदा वा अहमस्मीति।। 4।।
तस्मिंस्त्वयि किं वीर्यमिति। अपीदं सर्वं
दहेयम् यदिदं पृथिव्यामिति।। 5 ।।
तस्मै तृणं निदधौ, एतद् दहेति। तदुपप्रेयाय सर्वजवेन। तन्न शशाक दग्धुम्।
स तत एव निववृते, नैतदशकं विज्ञातुम्, यदेतद् यक्षमिति।। 6 ।।
अथ वायुमब्रुवन् वायवेतद् विजानीहि
किमेतद् यक्षमिति तथेति ।। 7 ।।
तदभ्यद्रवत्। तमभ्यवदत्, कोऽसीति?
वायुर्वा अहमस्मीत्यब्रवीत्, मातरिश्वा वा अहमस्मीति।।8।।
तस्मिंस्त्वयि किं वीर्यमिति। अपीदं सर्वमाददीयम्,
यदिदं पृथिव्याम् इति।। 9 ।।
तस्मै तृणं निदधौ, एतदादत्स्वेति। तदुपप्रेयाय सर्वजवेन।
तन्न शशाकऽऽदातुम्।
स तत एव निववृते, नैतदशकं विज्ञातुम्, यदेतद् यक्षमिति ।। 10 ।।
अथेन्द्रमब्रुवन्, मघवन्नेतद् विजानीहि, किमेतद् यक्षमिति।
तथेति तदभ्यद्रवत्। तस्मात् तिरोदधे। 11।।
स तस्मिन्नेवाकाशे स्त्रियमाजगाम बहुशोभमानामुमां हैमवतीम्।
तां होवाच किमेतद् यक्षमिति ।। 12 ।।

।। इति तृतीयः खण्डः।।

<u>चतुर्थः खण्डः</u>

सा ब्रह्मेति होवाच, ब्रह्मणो वा एतद्विजये
महीयध्वम् इति। ततो हैव विदाञ्चकार ब्रह्मेति।। 1 ।।
तस्माद्वा एते देवा अतितरामिवान्यान् देवान् यदग्निर्वायुरिन्द्रः।

ते ह्येनन्नेदिष्ठं पस्पृशुः। ते ह्येनत् प्रथमो विदाञ्चकार ब्रह्मेति ।। 2 ।।

तस्माद् वा इन्द्रोऽतितरामिवान्यान् देवान्। स ह्येनन्नेदिष्ठं पस्पर्श।

स ह्येनत् प्रथमो विदाञ्चकार ब्रह्मेति।। 3 ।।

तस्यैष आदेशो यदेतद् विद्युतो व्यद्युतदा इति

इन्न्यमीमिषदा इत्यधिदैवतम् ।। 4 ।।

अथाध्यात्मं यदेतद् गच्छतीव च मनो न

चैतदुपस्मरत्यभीक्ष्णं सङ्कल्पः ।। 5 ।।

तद्ध तद्वनं नाम तद्वनमित्युपासितव्यम्।

स य एतदेवं वेद, अभि हैनं सर्वाणि भूतानि संवाञ्छन्ति ।। 6 ।।

उपनिषदं भो ब्रूहीति। उक्ता त उपनिषत्।

ब्राह्मीं वाव त उपनिषदमब्रूमेति।। 7 ।।

तस्यै तपो दमः कर्मेति प्रतिष्ठा

वेदाः सर्वाङ्गानि सत्यमायतनम्।। 8 ।।

यो वा एतामेवं वेद अपहत्य पाप्मानमनन्ते।

स्वर्गे लोके ज्येये प्रतितिष्ठति प्रतितिष्ठति।। 9 ।।

।। इति चतुर्थः खण्डः।।

शान्तिमन्त्रः

ॐ आप्यायन्तु ममाङ्गानि वाक्प्राणश्चक्षुःश्रोत्रमथो बलमिन्द्रियाणि च सर्वाणि।

सर्वं ब्रह्मौपनिषदम् । माहं ब्रह्म निराकुर्याम्।

मा मा ब्रह्म निराकरोत्। अनिराकरणमस्तु। अनिराकरणं मेऽस्तु।

तदात्मनि निरते य उपनिषत्सु धर्मास्ते मयि सन्तु। ते मयि सन्तु।।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।।

केनोपनिषद्-रङ्गरामानुजभाष्यम्

ज्ञानगङ्गाहिन्दीव्याख्यासहितम्

शान्तिपाठः

ॐ आप्यायन्तु ममाङ्गानि वाक्प्राणश्चक्षुःश्रोत्रमथो बलमिन्द्रियाणि च सर्वाणि।
सर्वं ब्रह्मौपनिषदम् । माहं ब्रह्म निराकुर्याम्।
मा मा ब्रह्म निराकरोत्। अनिराकरणमस्तु। अनिराकरणं मेऽस्तु।
तदात्मनि निरते य उपनिषत्सु धर्मास्ते मयि सन्तु। ते मयि सन्तु।।
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।।

अन्वय

ॐ मम अङ्गानि वाक् प्राणः चक्षुः श्रोत्रम् अथो सर्वाणि इन्द्रियाणि च बलम् आप्यायन्तु। सर्वम् औपनिषदम् ब्रह्म। अहम् ब्रह्म मा निराकुर्याम्। ब्रह्म मा मा निराकरोत्। अनिराकरणम् अस्तु। मे अनिराकरणम् अस्तु। उपनिषत्सु ये धर्माः। ते तदात्मनि निरते मयि सन्तु। ते मयि सन्तु।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।।

अर्थ

ॐ- हे परमात्मन्! **मम**- मेरे **अङ्गानि**- हाथ, पैर आदि सभी अङ्ग **वाक्**- वाणी **प्राणः**- प्राण **चक्षुः**- आँख **श्रोत्रम्**- कान **अथो**- तथा **सर्वाणि**- सभी **इन्द्रियाणि**- इन्द्रियाँ **च**- और **बलम्**- बल

आप्यायन्तु- पुष्ट हों अर्थात् ब्रह्मविद्याकी प्राप्ति में उपयोगी हों। **सर्वम्**- सब कुछ **औपनिषदम्**- उपनिषत्प्रतिपाद्य **ब्रह्म**- ब्रह्म है। **अहम्**- मैं **ब्रह्म**- ब्रह्म का **मा निराकुर्याम्**- निराकरण न करुँ अर्थात् मैं ब्रह्मको अस्वीकार न करुँ। **ब्रह्म**- ब्रह्म **मा**- मेरा **मा निराकरोत्**- निराकरण न करे अर्थात् मोक्षके साधनसे च्युत न करे। मेरे साथ ब्रह्म का **अनिराकरणम् अस्तु**- प्रत्यक्ष सम्बन्ध बना रहे। ब्रह्म के साथ **मे**- मेरा **अनिराकरणम् अस्तु**[1]- प्रत्यक्ष सम्बन्ध बना रहे। **उपनिषत्सु**- उपनिषदों में **ये**- जो **धर्माः**- धर्म कहे गये हैं, **ते**- वे धर्म **तदात्मनि**- परमात्मसाक्षात्कार के साधन में **निरते**- लगे हुए **मयि**- मेरे में **सन्तु**- हों। **ते**- वे धर्म **मयि**- मेरे में **सन्तु**- हों। **ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः**- आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक इन तीनों तापों की निवृत्ति हो।

प्रथमः खण्डः

प्रथमो मन्त्रः

केनेषितं पतति प्रेषितं मनः
केन प्राणः प्रथमः प्रैति युक्तः।
केनेषितां वाचमिमां वदन्ति
चक्षुःश्रोत्रं क उ देवो युनक्ति॥ 1 ॥

अन्वयः

मनः केन प्रेषितम्[2] इषितम् पतति? प्रथमः प्राणः केन युक्तः प्रैति? केन इषिताम् इमां वाचं वदन्ति? उ [3] कः देवः चक्षुःश्रोत्रं युनक्ति?

अर्थ

मनः- मन **केन**- किस के द्वारा **प्रेषितम्**- प्रेरित होकर **इषितम्**-

---

टिप्पणी- 1. आदरार्थमेवं पुनर्वचनम्।
2. इष्टम् अत्र इडागमः छान्दसः (आ.भा.)।
3. उ शब्दः सम्बोधनार्थः।

विषय में **पतति**– जाता है? **प्रथमः**– मुख्य **प्राणः**– प्राण **केन**– किस से **युक्तः**– प्रेरित होकर **प्रैति**– संचरण करता है? प्राणी **केन**– किस से **इषिताम्**– प्रेरित **इमाम्**– इस **वाचम्**– वाक् इन्द्रिय का आलम्बन करके (शब्द को) **वदन्ति**– बोलते हैं? **उ**– हे आचार्य **कः**– कौन **देवः**– देवता **चक्षुःश्रोत्रम्**– चक्षु (आँख) और श्रोत्र इन्द्रिय को कार्य करने के लिए **युनक्ति**– प्रेरित करता है?

श्रीरङ्गरामानुजमुनिविरचितं प्रकाशिकाभिधानं भाष्यम्

अतसीगुच्छसच्छायमञ्चितोरस्स्थलं श्रिया।
अञ्जनाचलशृंगारमञ्जलिर्मम गाहताम्।।1।।
व्यासं लक्ष्मणयोगीन्द्रं प्रणम्यान्यान् गुरूनपि।
व्याख्यां तलवकारोपनिषदः करवाण्यहम्।।2।।

परमात्मस्वरूपं प्रश्नप्रतिवचनरूपप्रकारेण प्रकाशयितुं प्रस्तौति– ***केनेषितं पतति प्रेषितं मनःकेन प्राणः प्रथमः प्रैति युक्तः। केनेषितां वाचमिमां वदन्ति चक्षुःश्रोत्रं क उ देवो युनक्ति।*** *मनः केन **प्रेषितं** –प्रेरितं सत् स्वविषये प्रवर्तत इति भावः। **इषितम्** – इष्टं मतम्। प्राणानां मध्ये **प्रथमः प्राणः**– मुख्यः प्राणः केन प्रेरितः सन् **प्रैति**– प्रकर्षेण संचरति तथा केन वा प्रेरितामिमां **वाचम्** – वागिन्द्रियमवलम्ब्य व्यवहरन्ति लोकाः। तथा चक्षुश्श्रोत्रयोश्च कः प्रेरकः। अचेतनानामेषां चेतनाप्रेरितानां कार्यकरत्वासंभवाद् इति गुरुमुपेत्य शिष्यः पप्रच्छेत्यर्थः।।1।*

व्याख्या

येन व्याप्तमिदं सर्व चेतनाऽचेतनात्मकम्।
विशुद्धसद्गुणौघं तं सीताराममहं भजे ।।1।।
सूत्रवृत्तिकृतौ नत्वा व्यासबोधायनौ मुनी।
भाष्यकर्तारमाचार्यं प्रणमामि पुनः पुनः ।।2।।

विद्याचार्यान् हनूमन्तं गङ्गां च श्रीगुरुं भजे।
केनोपनिषदो भाष्यं व्याकरोमि यथामतिः।।3।।

मङ्गलाचरण

जिनकी अतसी के पुष्पों के समान नील कान्ति है और श्रीलक्ष्मीजी के द्वारा जिनका वक्षस्थल सुशोभित है; उन अञ्जनाद्रि की शोभा श्रीवेंकटेश भगवान् को मेरी प्रणामाञ्जलि समर्पित होवे।।1।। मैं (रङ्गरामानुज मुनि) महर्षि वेदव्यास, श्रीरामानुजाचार्य और अन्य गुरुजनों को भी प्रणाम करके केनोपनिषत् की व्याख्या करता हूँ ।।2।।

प्रेरक की जिज्ञासा

प्रश्नोत्तर की प्रक्रिया से परमात्मस्वरूप का बोध कराने के लिए श्रुति शिष्य की जिज्ञासा प्रस्तुत करती है-**केनेषितम्......युनक्ति**। मन किसके द्वारा **प्रेषितम्**- प्रेरित होकर अपने विषय में जाता है? यह अर्थ है। **इषितम्**-इष्ट अर्थात् अभिमत। प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान इन पाँच प्राणों के मध्य में **प्रथमः प्राणः**-मुख्य प्राण किससे प्रेरित होकर **प्रैति**-सुव्यवस्थितरूप से संचरण करता है और उसी प्रकार किससे प्रेरित होकर वक्ता इस **वाचम्**-वाक् इन्द्रिय का आश्रय लेकर शब्दों का उच्चारण करते हैं तथा चक्षु और श्रोत्र इन्द्रियों का प्रेरक कौन है? क्योंकि चेतन से प्रेरित हुए विना अचेतन मन, प्राण आदि का कार्य करना संभव नहीं, इस कारण प्रेरणा करने वाले चेतन की जिज्ञासा संभव होने से गुरु के समीप आकर शिष्य ने उस प्रेरक को पूँछा।

मन स्वतन्त्र होने से अपने विषय में स्वयं जाता है अतः प्रेरक के विषय में किया गया प्रश्न ही व्यर्थ है, ऐसा कहना उचित नहीं क्योंकि यदि वह स्वतन्त्र होता तो उससे अनिष्टचिन्तन नहीं होता किन्तु अनिष्टचिन्तन होता है और अपनी जिह्वाको काटने जैसे दुःखदायी कर्मोंमें भी प्रवृत्ति होती है इस लिए इसका प्रेरक इससे भिन्न कोई सिद्ध होता है। यहाँ पर उसकी ही जिज्ञासा की गयी है। सभी प्राणियोंके मन आदि करण कभी

अनिष्ट विषयोंमें भी जाते हैं और कभी चाहने पर भी इष्टविषयोंमें नहीं जाते। इसका क्या कारण है? ये अचेतन हैं अतः इन की प्रवृत्ति चेतन प्रेरक के विना संभव नहीं है। उनका प्रेरक कौन है? ऐसी जिज्ञासा होती है। जीवात्मा ही इनका प्रेरक है, ऐसा नहीं कह सकते क्योंकि मन अनिष्ट विषयों में भी जाता है। यदि जीवात्मा ही प्रेरक होता तो वह अपने लिए अनिष्ट विषयों में जाने के लिए मन को प्रेरित नहीं करता किन्तु मन अनिष्ट दुःखप्रद विषयों में भी जानेके लिए प्रेरित होता है, इससे सिद्ध होता है कि जीवात्मा इसका प्रेरक नहीं है इसलिए जीव के निग्रह करने पर भी मन विषय में जाता है। जीवात्मा से विलक्षण कोई चेतनविशेष इस का प्रेरक है, जो जीवके द्वारा किये निग्रह की अवहेलना भी कर देता है, उसे जानने के लिए जिज्ञासु ब्रह्मवेत्ता आचार्य से प्रश्न करता है। इन्द्रियों के अधिष्ठाता देवता भी प्रेरक नहीं हो सकते हैं क्योंकि वे भी परमात्मा से प्रेरित होनेवाले जीव हैं।

द्वितीयो मन्त्रः

श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो मनो यत्
वाचो ह वाचं स उ प्राणस्य प्राणः।
चक्षुषश्चक्षुरतिमुच्य धीराः
प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति॥ 2 ॥

अन्वय

यत् श्रोत्रस्य श्रोत्रम्, मनसः मनः, वाचः वाचम्, प्राणस्य प्राणः, चक्षुषः चक्षुः, सः ह उ धीराः अतिमुच्य प्रेत्य अस्मात् लोकात् अमृताः भवन्ति।

अर्थ

यत्- जो **श्रोत्रस्य**- कर्ण इन्द्रिय को **श्रोत्रम्**- श्रवण करने का

सामर्थ्य प्रदान करने वाला है। **मनसः**- मन को **मनः**- मनन करनेका सामर्थ्य प्रदान करने वाला है। **वाचः**- वाग् इन्द्रियको, **वाचम्**[1]- उच्चारण करने का सामर्थ्य देने वाला है। **प्राणस्य**- प्राण को **प्राणः**- प्रणन सामर्थ्य (जीवन धारण करने का सामर्थ्य) देने वाला है। **चक्षुषः**- चक्षु इन्द्रिय को **चक्षुः**- दर्शन करने का सामर्थ्य देने वाला है। **सः**- वह **ह**- प्रसिद्ध परमात्मा **उ**- ही तुम्हारे द्वारा मन आदि के प्रेरकरूप से पूँछा गया है। **धीराः**- सब के प्रेरक परमात्मा क़ो जानने वाले, **अतिमुच्य**[2]- साक्षात्कार करके **प्रेत्य**- देहत्यागके पश्चात् **अस्मात्**- इस **लोकात्**- लोक से भगवद्धाम जाकर **अमृताः**- मुक्त **भवन्ति**- हो जाते हैं।

भाष्यम्

गुरुः प्रतिवक्ति-**श्रोत्रस्य श्रोत्रं ....भवन्ति।** *चक्षुरादीनां प्रकाशकं चक्षुराद्यनधीनप्रकाशम् अप्राणाधीनप्राणनञ्च यत्* **स उ**–*स एव इत्येवम्* **अतिमुच्य**-*ज्ञात्वा अस्माल्लोकात् अर्चिरादिना मार्गेण गत्वा मुक्ता* **भवन्ति** *इत्यर्थः।2।*

व्याख्या

प्रेरक परमात्मा का उपदेश

गुरु उत्तर देता है-**श्रोत्रस्य श्रोत्रं ....भवन्ति**- जो चक्षु आदि इन्द्रियों से होने वाले प्रकाश(ज्ञान) का साधन, चक्षु आदि के विना

टिप्पणी- 1. वाचमिति विभक्तिव्यत्ययः छान्दसः।

2. **मोचनातिक्रमणं हि ग्रहणमेव** (उ.भा.प.1.2.) मुञ्च् धातुका त्याग करना अर्थ होता है किन्तु जैसे प्रसङ्गानुसार आङ्पूर्वक मुञ्च् धातुका **आमुञ्चद् वर्म** (भ.का.17.6) यहाँ धारण करना और प्रतिपूर्वक मुञ्च् धातुका **आयुष्यमग्र्यं प्रतिमुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतम्**।(पा.गृ.2.2.10) यहाँ पहनना या धारण करना अर्थ है, वैसे ही प्रस्तुत श्रुतिमें अतिमुच्य शब्द का प्रसङ्गानुसार साक्षात्कार अर्थ है।

प्रकाश वाला तथा प्राणों के विना जीवनधारण करने वाला है, **स उ**-वह प्रसिद्ध परब्रह्म ही तुम्हारे द्वारा मन आदि के प्रेरकरूप से पूछा गया है। ब्रह्मवेत्ता ऐसे परब्रह्म का **अतिमुच्य**- साक्षात्कार करके इस लोक से अर्चिरादिमार्ग द्वारा त्रिपादविभूति जाकर मुक्त हो जाते हैं।

तृतीयो मन्त्रः

न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति नो मनः।
न विद्मो न विजानीमो यथैतदनुशिष्यात्॥3॥

अन्वय

तत्र चक्षुः न गच्छति, वाक् न गच्छति, मनः नो, यथा एतद् न विद्मः न विजानीमः अनुशिष्यात्।

अर्थ

तत्र- परब्रह्म में **चक्षुः**- चक्षु इन्द्रिय **न**- नहीं **गच्छति**- जाती है। **वाक्**- वाक् **न**- नहीं **गच्छति**- जाती है। **मनः**- मन **नो**- नहीं जाता है। (तो परब्रह्म का उपदेश किस प्रकार करना चाहिए? शिष्य की ऐसी जिज्ञासा होने पर कहते हैं-) **यथा**- यथावस्थित **एतद्**- ब्रह्मतत्त्व को **न विद्मः**- अन्तर इन्द्रिय से नहीं जानते हैं, **न विजानीमः**- बहिरिन्द्रिय से नहीं जानते हैं,इसी प्रकार उसका **अनुशिष्यात्**- उपदेश करना चाहिए।

भाष्यम्

तदेव प्रपञ्चयति- ***न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति नो मनः।*** *तर्हि तत् कथमुपदेष्टव्यमित्यत्राह-****न विद्मो न विजानीमो यथैतदनुशिष्यात्****- किं तदिति पृष्ट आचार्यः, 'नान्तरिन्द्रियेण न बहिरिन्द्रियेण च ज्ञेयं तत्' इत्येव तदुपदिशेत्॥ 3॥*

व्याख्या

अब उक्त अर्थ को ही विस्तार से कहते हैं- प्रेरक परमात्मा में

चक्षु इन्द्रिय नहीं जाती, वाक् नहीं जाती और मन भी नहीं जाता तो उसका उपदेश कैसे करना चाहिए? ऐंसी शंका होने पर कहते हैं- **न विद्मो....** वह प्रेरक तत्त्व क्या है? ऐसा पूछने पर आचार्य 'हम उस ज्ञेय तत्त्व को अन्तर् इन्द्रिय मन से नही जानते और चक्षु आदि बाह्य इन्द्रियों से भी नहीं जानते।' ऐसा ही उसका उपदेश करे।

परब्रह्म में चक्षु इन्द्रिय नहीं जाती है अर्थात् चक्षु से परब्रह्म का ज्ञान नहीं होता है। चक्षु से रूप और रूपवान् वस्तु का ज्ञान होता है। परब्रह्मस्वरूप न तो रूप है और न ही रूप का आश्रय, अतः चक्षु इन्द्रिय से उसका ज्ञान नहीं हो सकता। किसी विषय का बोध कराने के लिए वाणी से शब्द का उच्चारण किया जाता है। वक्ता के द्वारा शब्दोच्चारण करने पर श्रोता को शब्द (पद) का प्रत्यक्ष होता है। इस से सहकारी कारण शक्तिज्ञान होने पर पदार्थस्मरण द्वारा शाब्दबोध होता है। इस प्रकार वाक् ज्ञेय विषय के बोध कराने का साधन बनती है। वाणी परब्रह्म में नहीं जाती है अर्थात् वाणी से उसका प्रतिपादन नहीं हो सकता है। मन परब्रह्म में नहीं जाता है अर्थात् मन से उसे नहीं जान सकते हैं।

द्वितीय मन्त्र में कहा गया है कि इन्द्रियाँ परमात्मा से सामर्थ्य प्राप्त करके ही विषयों के ज्ञान का साधन होती हैं किन्तु प्रस्तुत तृतीय मन्त्र में कहा कि उन से परमात्मा को नहीं जान सकते हैं। जैसे रूप के ज्ञान का साधन चक्षु है, वह रूप के ज्ञान का साधन ही होता है, रूप से ज्ञेय नहीं होता, वैसे ही चक्षु आदि के प्रति चक्षुभूत परमात्मा है, वह चक्षु आदि के ज्ञान का साधन ही होता है, चक्षु आदि से ज्ञेय नहीं होता।।

चतुर्थो मन्त्रः

अन्यदेव तद् विदितादथो अविदितादधि
इति शुश्रुम[1] पूर्वेषां ये नस्तद् व्याचचक्षिरे।। 4 ।।

टिप्पणी- 1. श्रवणस्य चिरकालीनत्वद्योतनाय परोक्षार्थकलिट्प्रयोगः, लिङर्थे लिड् वा। (उ.ख.)

अन्वय

तद् विदितात् अन्यत् एव। अथो अविदितात् अधि इति पूर्वेषां शुश्रुम। ये नः तद् व्याचचक्षिरे।

अर्थ

तद्- ब्रह्म **विदितात्**- ज्ञात पदार्थों से **अन्यत्**- अन्य (विलक्षण) **एव**- ही है। **अथो**- और **अविदितात्**- अज्ञात पदार्थों से **अधि**- अन्य है। **इति**- ऐसे वचन हमने **पूर्वेषाम्**- पूर्वाचार्यों के (मुख से) **शुश्रुम**- सुने हैं। **ये** - जिन्होने **नः**- हम लोगों को **तद्**- ब्रह्म का **व्याचचक्षिरे**- उपदेश किया था।

भाष्यम्

*ननु तस्य सर्वात्मना ज्ञानाविषयत्वे तुच्छत्वं स्यात्, ब्रह्मजिज्ञासया गुरूपसदनादिकञ्च न स्यादित्यत्राह-***अन्यदेव तद्..........व्याचचक्षिरे। ये** - *अस्माकं पूर्वे गुरवः ब्रह्मोपादिशन् तेषाम् 'सर्वात्मना विदितादपि विलक्षणं सर्वात्मना अविदितादपि विलक्षणमेवं रूपं ब्रह्म।' इतीदृशीं वाचं वयं श्रुतवन्त इत्यर्थः।।4।।*

व्याख्या

विदित और अविदित से विलक्षण ब्रह्म

ब्रह्म का सब प्रकार से ज्ञानाविषयत्व होने पर तुच्छत्व होगा और ऐसा होने पर ब्रह्मजिज्ञासा से गुरु के समीप में जाना आदि संभव नहीं होगा, ऐसी शंका होने पर कहते हैं-**अन्यदेव तद्.........। ये**-हमारे पूर्वकालिक गुरुजनों ने ब्रह्म का उपदेश किया था, उनके 'सब प्रकार से विदित से विलक्षण और सब प्रकार से अविदित से भी विलक्षण ऐसे रूप वाला ब्रह्म है।' ऐसे वचन हम सबने सुने थे, यह प्रस्तुत मन्त्र का अर्थ है।

शंका- उपर तृतीय मन्त्र मे ब्रह्म को किसी भी प्रकार ज्ञान का विषय (ज्ञेय) नहीं कहा। जो वस्तु सर्वथा ज्ञान का विषय नहीं होती, वह तुच्छ होती है। जैसे-शशविषाण आदि। यदि ब्रह्म सर्वथा अज्ञेय है तो वह भी तुच्छ होगा और ऐसा होने पर ब्रह्मजिज्ञासा से गुरु के समीप जाना, उनकी सेवा करना तथा प्रश्न करना भी संभव नहीं होगा।

समाधान-उक्त शंका उचित नहीं क्योंकि ब्रह्म चक्षु आदि का विषय न होने पर भी तुच्छ नहीं है, इस विषय का सूचक यह चतुर्थ मन्त्र है। इसमें ब्रह्म को विदित और अविदित से विलक्षण कहा गया है। भाष्य में अविदित का अर्थ **सर्वात्मना विदितादपि विलक्षणम्** और विदित का अर्थ **सर्वात्मना अविदितादपि विलक्षणम्** किया गया है। ब्रह्म स्वरूप अपरिच्छिन्न है, उसके गुण भी अपरिच्छिन्न हैं किन्तु घटादि पदार्थ परिच्छिन्न हैं अत: इनको सर्वात्मना(सब प्रकार से) परिच्छेदसहित जानते हैं, उन पदाथों का घटत्वादिविशिष्टत्वेन ज्ञान होता है तथा 'यह इतना है।', इस प्रकार इयत्ताविशिष्टत्वेन ज्ञान होता है। किसी पदार्थ को इयत्ताविशिष्टत्वेन जानना सर्वात्मना जानना है, ऐसे सर्वात्मना ज्ञान के विषय का श्रुति विदित पद से निर्देश करती है, इससे विलक्षण है-ब्रह्म।। जीवात्मा गुणत: अपरिच्छिन्न होने पर भी स्वरूपत: परिच्छिन्न है अत: उसका भी परिच्छेदरहितरूप से ज्ञान नहीं होता। चक्षु आदि के अविषय ब्रह्म का शास्त्र प्रमाण से परोक्ष ज्ञान होता है और मनन, निदिध्यासन करने पर शुद्ध मन से अपरोक्ष ज्ञान होता है, ऐसा होने पर भी वह विदित अर्थात् स्वरूपत: और गुणत: परिच्छेदसहित ज्ञात पदार्थों से विलक्षण है। ब्रह्म जैसे विदित से विलक्षण है, वैसे ही अविदित से भी विलक्षण है। घटादि अचेतन और चेतन जीवात्मा ये विदित हैं, इनसे भिन्न शशविषाणादि अविदित कहलाते हैं। इनका किसी भी प्रकार ज्ञान नहीं होता इसलिए ये सर्वात्मना अविदित कहलाते हैं, इनसे भी विलक्षण ब्रह्म है। अविदित का ज्ञान होता ही नहीं और ब्रह्म का होता है, तभी ब्रह्मजिज्ञासा से गुरु के समीप जाने का विधान करने वाली **तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः**

श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्(मु.उ.1.2.12)यह श्रुति सार्थक होती है। जो वस्तु इन इन्द्रियों या योगसाधना के द्वारा परिच्छेदसहित विदित होती है, उससे विलक्षण ब्रह्म है और जो किसी भी प्रकार विदित नहीं होती, उससे भी विलक्षण है। इस विवरण से स्पष्ट है कि ब्रह्म को सकलेतरविलक्षण कहने में ही प्रस्तुत श्रुति का तात्पर्य है, अज्ञेय कहने में नहीं।

पञ्चमो मन्त्र

यद् वाचाऽनभ्युदितं येन वागभ्युद्यते।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥ 5 ॥

अन्वय

यद् वाचा अनभ्युदितम्। येन वाग् अभ्युद्यते। त्वम् तद् एव ब्रह्म विद्धि। यद् इदम् उपासते, इदम् न।

अर्थ

यत्- जो **वाचा**- वाणी से **अनभ्युदितम्**- प्रतिपादित नहीं होता है। **येन**- जिस से प्रेरित होकर **वाक्**- वाणी **अभ्युद्यते**- प्रतिपादन करती है। **त्वम्**- तुम **तद्**- उसे **एव**- ही **ब्रह्म**- ब्रह्म **विद्धि**- जानो। **यत्**- जो **इदम्**- जगत् **उपासते**- उपासित होता है। (वह) **इदम्**- जगत् **न**- ब्रह्म नहीं है।

षष्ठो मन्त्रः

यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतम्।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते॥ 6 ॥

अन्वय

यत् मनसा न मनुते। येन मनः मतम् आहुः। त्वम् तद् एव ब्रह्म विद्धि। यत् इदम् उपासते इदम् न।

अर्थ

ज्ञाता **यत्** - जिसे **मनसा** - मन से **न** - नहीं **मनुते** - जानता है। **येन** - जिससे प्रेरित होकर **मनः** - मन **मतम्**[1] - जानने वाला होता है, ऐसा विद्वान् **आहुः** - कहते हैं। **त्वम्** - तुम **तद्** - उसे **एव** - ही **ब्रह्म** - ब्रह्म **विद्धि** - जानो। **यत्** - जो **इदम्** - जगत् **उपासते** - उपासित होता है। (वह) **इदम्** - जगत् **न** - ब्रह्म नहीं है।

सप्तमो मन्त्रः

यच्चक्षुषा न पश्यति येन चक्षूंषि पश्यति।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते॥7॥

अन्वय

यत् चक्षुषा न पश्यति, येन चक्षूंषि पश्यति। त्वम् तद् एव ब्रह्म विद्धि। यत् इदम् उपासते, इदम् न।

अर्थ

द्रष्टा जीव **यत्**- जिसे **चक्षुषा**- नेत्र से **न**- नहीं **पश्यति**- देखता है। **येन**- जिस परमात्मरूप साधन से **चक्षूंषि**- नेत्रों को **पश्यति**- देखता है। **त्वम्**- तुम **तद्**- उसे **एव**- ही **ब्रह्म**- ब्रह्म **विद्धि**- जानो। **यत्**- जो **इदम्**- जगत् **उपासते**- उपासित होता है, वह **इदम्**- जगत् **न**- ब्रह्म नहीं है।

अष्टमो मन्त्रः

यत् श्रोत्रेण न शृणोति येन श्रोत्रमिदं श्रुतम्।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥ 8 ॥

अन्वय

यत् श्रोत्रेण न शृणोति। येन इदम् श्रोत्रम् श्रुतम्। त्वम् तद् एव ब्रह्म विद्धि यत् इदम् उपासते इदम् न।

टिप्पणी- 1. मतमिति भावे क्तः, मनोवृत्तिः उच्यते अर्शआद्यच्(सु.)।

अर्थ

श्रोता **यत्**- जिसे **श्रोत्रेण**- श्रोत्र इन्द्रिय से **न**- नहीं **शृणोति**- सुनता है, **येन**- जिससे प्रेरित होकर **इदम्**- यह **श्रोत्रम्**- श्रोत्र इन्द्रिय **श्रुतम्**- सुनने वाली होती है, **त्वम्**- तुम **तद्**- उसे **एव**- ही **ब्रह्म**- ब्रह्म **विद्धि**- जानो। **यत्**- जो **इदम्**- जगत् **उपासते**- उपासित होता है। (वह) **इदम्**- जगत् **न**- ब्रह्म नहीं है।

नवमो मन्त्रः

यत्प्राणेन न प्राणिति येन प्राणः प्रणीयते।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते॥ 9 ॥

अन्वय

यत् प्राणेन न प्राणिति। येन प्राणः प्रणीयते। त्वम् तदेव ब्रह्म विद्धि। यद् इदम् उपासते, इदम् न।

अर्थ

यत्- जो **प्राणेन**- प्राण से **न प्राणिति**- जीवन धारण नहीं करता। **येन**- जिसके द्वारा **प्राण**- प्राण **प्रणीयते**- जीवन धारण करते हैं। **त्वम्**- तुम **तदेव**- उसे ही **ब्रह्म**- ब्रह्म **विद्धि**- जानो। **यत्**- जो **इदम्**- जगत् **उपासते**- उपासित होता है। (वह) **इदम्**- जगत् **न**- ब्रह्म नहीं है।

भाष्यम्

*एतदेव प्रपञ्चयति-***यद् वाचाऽनभ्युदितं........यदिदमुपासते**- *वागादिभिर्यदप्रकाश्यं स्वयं वागादीन्द्रियप्रकाशकञ्च, तदेव ब्रह्मेति जानीहि। यद् वस्तु इदमिति इदङ्कारगोचरतया हस्तामलकवत् सुविदिततयोपासते जनाः, तद् ब्रह्म नेत्यर्थः, एवमुत्तरत्रापि।* **यच्चक्षुषा न पश्यति येन चक्षूंषि पश्यति**- *येन परमात्मना साधनेन पुमान् इतरत् पश्यतीत्यर्थः।* **यत्प्राणेन न प्राणिति येन प्राणः प्रणीयते। प्रणीयते**- *प्राणितीत्यर्थः॥ 5-9॥*

व्याख्या

अब इसे ही विस्तार से कहते हैं- **यद् वाचाऽनभ्युदितं........यदिदमुपासते।** जो वागादि इन्द्रियों से ज्ञेय नहीं है और स्वयं वागादि इन्द्रियों(से होने वाले) के ज्ञान का साधन है। तुम उसे ही ब्रह्म जानो 'यह है' इस प्रकार इदम् प्रत्यय का विषय होने के कारण हाथ में रखे आमले के समान सुज्ञेयरूप से जिस वस्तु का लोग चिन्तन करते हैं, वह ब्रह्म नहीं है, इसी प्रकार आगे भी जानना चाहिए। **यच्चक्षुषा न पश्यति येन चक्षूंषि पश्यति**- जिस परमात्मरूप साधन से मनुष्य चक्षुओं को भी देखता है। **यत्प्राणेन न प्राणिति येन प्राणः प्रणीयते। प्रणीयते**-जीवन धारण करता है।

भाष्य में आये 'वागादीन्द्रियप्रकाशकम्' का अर्थ है-वागादि इन्द्रियो से होने वाले ज्ञान का साधन। इसका वागादि इन्द्रियों का प्रकाशक(ज्ञाता) अर्थ भी हो सकता है। इन्द्रिय अतीन्द्रिय पदार्थ है, वह सामान्य प्राणी के ज्ञान का अविषय है किन्तु परमात्मा को उसका ज्ञान होता है। वाणी के द्वारा जो परिच्छिन्न रूप से प्रतिपाद्य नहीं है, वाणी को प्रतिपादन करने की शक्ति देता है और उसे किसी विषय का प्रतिपादन करने के लिए प्रेरित करता है, उसे ही ब्रह्म जानना चाहिए। कामनाओं से दूषित मन वाले संसारी प्राणी जिसकी उपासना(चिन्तन) करते हैं, वह ब्रह्म नहीं है। संसारी प्राणी तुच्छ विषय का चिन्तन करते हैं, वह परिच्छिन्न वस्तु है, ब्रह्म नहीं । इस प्रकार यहाँ परिच्छिन्न वस्तु के उपास्यत्व का निषेध किया जाता है, ब्रह्म के उपास्यत्व का निषेध नहीं किया जाता अपितु जगत् से ब्रह्म की विलक्षणता का प्रतिपादन किया जाता है। प्रतीकोपासना और अप्रतीकोपासना के भेद से उपासनाएं दो प्रकार की होती हैं -

1. प्रतीकोपासना

ब्रह्मसे भिन्न मन आदि परिच्छिन्न पदार्थों को ब्रह्म समझ कर की जाने वाली उपासना प्रतीकोपासना कही जाती है- **अब्रह्मणि**

ब्रह्मदृष्ट्यानुसन्धानं प्रतीकोपासनम्। जैसे- 'मन ब्रह्म है।' इस प्रकार उपासना करनी चाहिए- **मनो ब्रह्मेत्युपासीत**(छां. उ.3.18.1) इत्यादि।। यह मन के अन्तरात्मा ब्रह्म की उपासना नहीं है क्योंकि इसका क्षुद्र फल कहा गया है अतः मोक्ष की साधन नहीं है, अयथार्थ ज्ञानरूप है।

2. अप्रतीकोपासना

प्रतीकोपासना से भिन्न उपासना अप्रतीकोपासना कही जाती है। यह ब्रह्म को ही ब्रह्म समझकर की जाने वाली उपासना है। यह यथार्थ ज्ञान है, मोक्ष की साधन है। जैसे - प्रत्यगात्मा अपने शरीर का आत्मा है, वैसे ही परमात्मा प्रत्यगात्मा का भी आत्मा है इसलिए अपनी स्वतन्त्रता की लेशतः भी प्रतीति न होने के लिए तथा ब्रह्म के अधीन अपना स्वरूप है, इस ज्ञान की दृढ़ता के लिए **अहं ब्रह्मास्मि** इस प्रकार उपासना करनी चाहिए।

मनो ब्रह्मेत्युपासीत इत्यादि प्रकार से विहित प्रतीकोपासना का उपास्य परिच्छिन्न है। प्रकृत मन्त्रमें मन आदि परिछिन्न पदार्थ के उपास्यत्व का निषेध किया जाता है। वह ब्रह्म नहीं किन्तु वाग् के द्वारा परिच्छिन्नत्वेन अप्रतिपाद्य तथा उसका प्रेरक अपरिच्छिन्न वस्तु ब्रह्म है। अप्रतीकोपासना का विषय ब्रह्म के उपास्य होने का प्रस्तुत मन्त्र में निषेध नहीं किया जाता अपितु जिस प्रतीक की उपासना की जाती है, वह ब्रह्म नहीं है, यह **नेदं यदिदमुपासते** का अर्थ है। इस प्रकार उपास्य प्रतीक के ब्रह्मत्व का निषेध किया जाता है। वाणी के द्वारा परिच्छिन्नत्वेन जिसका प्रतिपादन किया जाता है, उससे भिन्न तथा वाणी के द्वारा किये जाने वाले शब्दव्यवहार का जो कारण है, उसे ब्रह्म जानना चाहिए। जिस जड़ अथवा चेतन परिच्छिन्न वस्तु का चिन्तन किया जाता है, वह ब्रह्म नहीं है। घटादि जड़ पदार्थ परिच्छिन्न हैं। चेतन जीवात्मा भी परिच्छिन्न है अतः वह भी उपास्य नहीं है, इनसे भिन्न ब्रह्म ही उपास्य है।

इस मन्त्र के द्वारा ब्रह्म के भी उपास्यत्व का निषेध मानने पर

परमात्मरूप फल की ही उपासना करनी चाहिए - **आत्मानमेव लोकमुपासीत**(बृ.उ.1.4.15) तथा परमात्मा की आत्मत्वेन ही उपासना करनी चाहिए - **आत्मेत्येवोपासीत**(बृ.उ.1.4.7) इत्यादि वचनों तथा प्रस्तुत श्रुति के **तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि** इस अंश से भी विरोध होता है। यदि कहना चाहें कि इस अंश से ब्रह्म का वेद्यत्व (ज्ञेयत्व) कहा जाता है, उपास्यत्व नहीं तो यह कथन भी उचित नहीं है क्योंकि वेदन का अर्थ उपासना ही होता है तथा वेद्यत्व और उपास्यत्व एक ही होते हैं। मन की ब्रह्मदृष्टि से उपासना करें- **मनो ब्रह्मेत्युपासीत** (छां.उ.3.18.1) इस प्रकार उपासना शब्द से आरम्भ किये गये विषय का 'जो पुरुष इस प्रकार जानता है, वह दानजन्य कीर्ति से और पराक्रमजन्य यश से प्रकाशित होता है, तथा वेदाध्ययन की समृद्धिरूप ब्रह्मतेज से सम्पन्न होकर अपना कार्य करनेमें उत्साहित होता है' - **भाति च तपति च कीर्त्या यशसा ब्रह्मवर्चसेन य एवं वेद।**(छां.उ.3.18.3) इस प्रकार वेदन शब्द से उपसंहार देखा जाता है। रैक्व जिस वेद्य को जानता है, अन्य विद्वान् उसके अन्तर्गत ही कुछ जानते है। वह सर्वज्ञ रैक्व मेरे द्वारा कहा गया - **यस्तद् वेद यत् स वेद, स मयैतदुक्तः।**(छां.उ.4.1.4) इस प्रकार उपक्रम में वेदन शब्द से कहे गये रैक्व के ज्ञान का 'हे भगवन्! आप जिस देवता की उपासना करते हैं, उसका मुझे उपदेश कीजिए - **अनु म एतां भगवो देवतां शाधि, यां देवताम् उपास्से।**(छां. उ.4.2.2)' इस प्रकार उपासना शब्द से उपसंहार देखा जाता है। इससे वेदन और उपासना शब्द का एक अर्थ सिद्ध होता है।

शंका- जिज्ञासु परब्रह्म को जानने के लिए गुरु के ही पास जाए - **तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत्** (मु.उ.1.2.12) गुरुदेव ब्रह्म का बोध कराने के लिए वाणी से ही उपदेश करते हैं। इस प्रकार वाणी ब्रह्म का बोध कराने में साधन बनती है। यदि वाणी से उसका बोध नहीं कराया जा सकता है तो उसके ज्ञान के लिए गुरु के समीप जाने का विधान करने वाली उक्त श्रुति की क्या संगति होगी? इसी प्रकार यदि मन

से परमात्मा का ज्ञान नहीं होता तो मन से परमात्मा के ज्ञान का विधान करने वाली "श्रवण, मनन के पश्चात् विशुद्ध मन से परमात्मा को जानना चाहिए" - **मनसैवानुद्रष्टव्यम्** (बृ.उ.4.4.19) इस श्रुति की भी क्या संगति होगी?

समाधान- वाणी से परमात्माका परोक्ष ज्ञान होता है और मनन, निदिध्यासन करने पर मन से उसका प्रत्यक्ष ज्ञान होता है। परमात्मा अपरिच्छिन्न है, घटादि वस्तुएं परिच्छिन्न हैं, परिच्छिन्न वस्तुएं परिच्छेद(सीमा) से युक्त होती हैं। अपरिच्छिन्न परब्रह्म का परिच्छेद नहीं होता अतः वाणी से उसे न जानने का अर्थ है कि वाणी से उसका परिच्छिन्नरूप से ज्ञान नहीं हो सकता। वाणी से ब्रह्म का यथावस्थित अपरिच्छिन्नरूप से ज्ञान होता ही है। मन से ब्रह्म को नहीं जानते हैं, इसका अर्थ है कि परिच्छिन्नरूप से नहीं जानते हैं और मन से ब्रह्म को जानते हैं, इस का अर्थ है कि अपरिच्छिन्नरूप से जानते हैं। इसी अभिप्राय से कहा है कि मनके सहित वाणी जिस ब्रह्मानन्द की इयत्ता को न पाकर जहाँ से लौट आती है- **यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।** इस श्रुति का अग्रिम अंश इस प्रकार है- उस ब्रह्मानन्द को जानने वाला व्यक्ति कभी भी संसारभय को प्राप्त नहीं होता है-**आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् न बिभेति कदाचन।** (तै.उ.2.4.1) यह वाक्य स्पष्टरूपसे ब्रह्म को ज्ञेय कहता है। इसे विस्तारसे समझने के लिए 'विशिष्टाद्वैत वेदान्त का विस्तृत विवेचन' ग्रन्थ का अध्ययन करना चाहिए।

अपरोक्ष और परोक्ष भेद से मन के कार्य दो प्रकार के होते हैं। चिन्तन-मनन करना मन का परोक्ष कार्य है और परमात्मस्वरूप का प्रगाढ़ चिन्तन करते करते उसका दर्शन करना अपरोक्ष कार्य है। चिन्तन-मनन और दर्शन ये सभी ज्ञान ही हैं। अपरिच्छिन्न परमात्मा का मन से परिच्छिन्न रूप से ज्ञान नहीं हो सकता । परमात्मा से प्रेरित मन ज्ञाता के ज्ञान का साधन होता है। रूप और रूपवान् पदार्थ चक्षु के विषय होते

इससे भिन्न परमात्मस्वरूप को कोई द्रष्टा चक्षु से नहीं देख सकता है। वह परमात्मरूप साधन से चक्षु को भी देखता है। यहाँ चक्षु का अर्थ गोलक(चक्षु के रहने का स्थान) है अथवा चक्षु इन्द्रिय ही अर्थ है। इन्द्रियों का अतीन्द्रियत्व तो सामान्य मनुष्य की अपेक्षा से कहा जाता है, उच्च साधक की अपेक्षा से नहीं । चक्षु के अविषय को और उसे देखने के प्रधान साधन को ब्रह्म समझना चाहिए। श्रोत्र इन्द्रिय से शब्द सुना जाता है। परमात्मा शब्द नहीं है अतः वह श्रोत्र से नहीं सुना जाता किन्तु उससे प्रेरित श्रोत्र श्रोता के सुनने का साधन होती है। परमात्मा का अस्तित्व इतरनिरपेक्ष है, प्राणादि का अस्तित्व उसके अधीन है। जीव की चक्षु आदि इन्द्रियाँ मन के विना अपना कार्य नहीं कर सकती हैं, मन प्राण के विना कार्य नही कर सकता और प्राण परमात्मा के विना कार्य नहीं कर सकता है। इस प्रकार सबको कार्य करने के लिए प्रेरित करने वाले और कार्यानुकूल सामर्थ्य देने वाले परमात्मा ही हैं।

।। प्रथम खण्ड समाप्त ।।

द्वितीयः खण्डः

प्रथमो मन्त्रः

यदि मन्यसे सुवेदेति दभ्रमेवापि[1] नूनम्
त्वं वेत्थ ब्रह्मणो रूपम्।
यदस्य त्वं यदस्य देवेषु अथ नु
मीमांस्यमेव ते मन्ये विदितम्।। 1 ।।

अन्वय

सुवेद इति यदि मन्यसे। त्वम् अपि नूनम् ब्रह्मणः रूपं दभ्रम एव

टिप्पणी - 1. दहरमेवापि इति पाठान्तरः।

वेत्थ। अस्य यत् त्वम्, अथ नु देवेषु अस्य यत्। ते मीमांस्यम् एव। विदितम् मन्ये।

अर्थ

मैं ब्रह्म को **सुवेद**- सम्यक् जानता हूँ **इति**- ऐसा **यदि**- यदि **मन्यसे**- मानते हो तो **त्वम्**- तुम **अपि**- भी **नूनम्**- निश्चित रूपसे **ब्रह्मणः**- ब्रह्म के **रूपम्**- रूप को **दभ्रम्**- अल्प **एव** - ही **वेत्थ**- जानते हो। इस लोक में विद्यमान **अस्य**- ब्रह्म के **यत्**- जिस रूप को **त्वम्**- तुम जानते हो **अथ नु**- और **देवेषु**- देवताओं में विद्यमान **अस्य**- ब्रह्म के **यत्**- जिस रूप को तुम जानते हो, वह अल्प ही है इसलिए अब **ते**- तुम्हारे द्वारा ब्रह्म **मीमांस्यम्**- विचारणीय **एव**- ही है। इस वाक्य को सुनने के बाद विचार करके शिष्य ने कहा कि मैं ब्रह्मस्वरूप को **विदितम्**- जाना हुआ **मन्ये**- मानता हूँ।

भाष्यम्

शिष्यं प्रत्याह- **यदि मन्यसे............ मीमांस्यमेव ते।** *अहं ब्रह्मस्वरूपं सुष्ठु वेदेति यदि मन्यसे, न तत् तथा। अस्य ब्रह्मण इह लोके यदपि रूपं त्वं वेत्थ, तन्नूनं* **दभ्रमेव**- *अल्पमेव। देवेषु यद् रूपं* **त्वं वेत्थ,** *तदपि* **दभ्रमेव**- *अल्पमेव। त्वया ज्ञातं सर्वं ब्रह्मणो रूपमल्पमेव। न सर्वं ब्रह्मरूपं त्वया ज्ञातम्। अतः परमेव ते ब्रह्म विचार्यम्, नातः पूर्वं सम्यग् विचारितम् इत्यर्थः। एतद् वाक्यं श्रुत्वा सम्यग् विचार्य शिष्य आह-***मन्ये विदितम्** - *अहं विदितमेव मन्ये।।1।।*

व्याख्या

ब्रह्मज्ञान की अलौकिकता

आचार्य शिष्य से कहते हैं-**यदि मन्यसे............ मीमांस्यमेव ते।** मैं ब्रह्म के स्वरूप को सम्यक् जानता हूँ, ऐसा यदि तुम मानते हो, तो सुनो कि ब्रह्मस्वरूप परिच्छिन्न पदार्थों के समान सम्यक् ज्ञेय नहीं है।

इस लोक में इस ब्रह्म के जिस रूप को भी तुम जानते हो, वह निश्चित रूप से **दभ्रमेव**-अल्प (परिच्छेदसहित) ही है। देवताओं में विद्यमान इसके जिस रूप को तुम जानते हो, वह भी **दभ्रमेव**- अल्प ही है। अभी तक तुम्हारे द्वारा ज्ञात ब्रह्म के सभी रूप अल्प ही हैं। ब्रह्म का सम्पूर्ण रूप तुम्हारे द्वारा ज्ञात नहीं है। इसलिए आगे भी तुम्हारे लिए ब्रह्म विचारणीय ही है, यह श्रुति का अर्थ है। इस श्रुति वाक्य को सुनकर उसका सम्यक् विचार करके शिष्य ने कहा कि **मन्ये विदितम्** -'मैं ब्रह्म को विदित ही मानता हूँ।

घटादि परिच्छिन्न पदार्थों का 'यह इतना है' इस प्रकार सम्यक् ज्ञान होता है। यदि कोई घटादि के समान ब्रह्म को भी सम्यक् जानता है तो यह निश्चित है कि ब्रह्म के रूप का अल्प ही ज्ञान हुआ है क्योंकि ब्रह्म अपरिच्छिन्न है इसलिए यदि कोई अपने को परिच्छिन्न पदार्थ के समान ब्रह्म को सम्यक् जानने वाला मानता है तो उसका ज्ञान अल्प है,, वह यथावत ब्रह्म को नहीं जानता।

परमात्मा सर्वत्र है, वह इस लोक के प्राणियों में है, स्वर्गलोक के देवताओं में है, अन्य लोकों में भी है। वह चेतन-अचेतन सभी पदार्थों में अन्तर्यामी रूप से व्याप्त है इसलिए सभी का प्रेरक है। ब्रह्म अपरि-च्छिन्न है अर्थात् देश, काल और वस्तु परिच्छेद से रहित है। चेतन जीव और अचेतन प्रकृति ये परिच्छेद वाले हैं। व्यापक ब्रह्म चेतनाऽचेतन सभी वस्तुओं के अन्दर रहता है और बाहर भी रहता है - **तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः।** (ई.उ.5) इस जगत् में जो कुछ पदार्थ दिखाई देता है या सुनायी देता है, उस सभी को अन्दर और बाहर से व्याप्त करके नारायण स्थित है - **यच्च किंचिज्जगत्यस्मिन् दृश्यते श्रूयतेऽपि वा। अन्तर्बहिश्च तत्सर्वं व्याप्य नारायणः स्थितः॥** (तै.ना.उ.94) परमात्मा युगपद् सभी पदार्थों के अन्दर और बाहर रहता है, यह उसकी अन्य पदार्थों से विलक्षणता है।

जो वस्तु जैसी है, उसे वैसे ही जानना पूर्ण ज्ञान है। घटादि पदार्थ परिच्छिन्न हैं अतः उनका परिच्छिन्नत्वेन ज्ञान पूर्ण ज्ञान है। ब्रह्म अपरिच्छिन्न वस्तु है अतः उसका अपरिच्छिन्नत्वेन ज्ञान पूर्ण ज्ञान है। घटादि के समान ब्रह्म का परिच्छिन्नत्वेन ज्ञान अल्प ज्ञान है। यदि इस लोक में विद्यमान और देवताओं में भी विद्यमान ब्रह्म के रूप को घटादि के समान 'मैं सम्यक् जानता हूँ,' ऐसा शिष्य मानता है, तो शिष्य के लिए अभी ब्रह्म विचारणीय ही है। इस विषय को सुनने के पश्चात् विचार करके शिष्य ने कहा कि मैं ब्रह्म को विदित (ज्ञात) मानता हूँ। ब्रह्म को सम्यक् जान सकते हैं किन्तु घटादि के समान नहीं जान सकते। शिष्य ने विदित कहा, घटादि के समान सम्यक् विदित नहीं कहा। इससे सिद्ध होता है कि उसका ज्ञान गुरु के द्वारा उपदिष्ट पूर्ण ज्ञान है। प्रथम मन्त्र से प्रतिपाद्य विषय के व्याख्यानरूप अब द्वितीय और तृतीय मन्त्र क्रम से उपस्थित होते हैं-

द्वितीयो मन्त्रः

नाहं मन्ये सुवेदेति नो न वेदे[1]ति वेद च।
यो नस्तद् वेद तद् वेद नो न वेदेति वेद च॥2॥

अन्वय

सुवेद इति अहम् न मन्ये, च न वेद इति नो, वेद। नः यः नो न वेदेति वेद च तद् वेद, तद् वेद।

अर्थ

ब्रह्मस्वरूप को **सुवेद**- सम्यक् जानता हूँ, **इति**- ऐसा **अहम्**- मैं **न**- नहीं **मन्ये**- मानता **च**- और ब्रह्मस्वरूप को **न**- नहीं **वेद**- जानता **इति**- ऐसा भी **नो**- नहीं मानता किन्तु मैं ब्रह्मस्वरूप को **वेद**-

---

टिप्पणी- 1. **वेद**- पूर्वार्धे अयं धातुः उत्तमपुरुषः, उत्तरार्धे यो नस्तद्वेद तद्वेद इत्यत्र तु प्रथमः पुरुषः।

जानता हूँ, ऐसा ही मानता हूँ। **नः**- हम सहपाठियों के मध्य में **यः**- जो कोई '**नो न वेदेति वेद च**[1]' इस रीति से मेरे द्वारा प्रतिपादित **तत्**- तत्त्व को **वेद**- जानता है, वह **तद्**- ब्रह्म को **वेद**- जानता है।

भाष्यम्

कथमित्यत्राह- **नाहं मन्ये सुवेदेति नो न वेदेति वेद च**- अहं सम्यग् वेदेत्यपि न मन्ये, न वेदेत्यपि न, अपितु वेदैव, ततश्च कात्स्न्र्येन ज्ञातत्वमज्ञातत्वञ्च नास्ति, किञ्चित् ज्ञातत्वमस्तीत्यर्थः। **यो नस्तद् वेद तद् वेद नो न वेदेति वेद च। नः**-अस्माकं ब्रह्मचारिणां मध्ये **तत्-नो न वेदेति वेद च** इति निर्दिष्टं तद् अर्थतत्त्वं यो वेद, स तद् ब्रह्म वेदेत्यर्थः।

व्याख्या

ब्रह्मस्वरूप का यथार्थज्ञान

तुम्हारे द्वारा विदित ब्रह्म कैसा है, ऐसी जिज्ञासा होने पर शिष्य कहता है- **नाहं मन्ये ....**मैं ब्रह्म को घटादि के समान सम्यक् जानता हूँ, ऐसा भी नहीं मानता और नहीं जानता हूँ, ऐसा भी नहीं मानता बल्कि जानता ही हूँ, ऐसा मानता हूँ, और ऐसा मानने से ब्रह्म का परिच्छिन्न पदार्थों के समान सब प्रकार से ज्ञातत्व (विदितत्व)और सर्वथा अज्ञातत्व (अविदितत्व) नहीं है, कुछ ज्ञातत्व है, यह मन्त्र के पूर्वार्ध का अर्थ है। **यो नस्तद् वेद..........। नः**- हम ब्रह्मचारियों के मध्य में **तत्- नो न वेदेति वेद च** इस प्रकार निर्देश किए गये उस ब्रह्म तत्त्व को जो जानता है, वह उस ब्रह्म को जानता है, यह उत्तरार्ध का अर्थ है। यहाँ भाष्य में आए कात्स्न्र्येन ज्ञातत्व का अर्थ है-लोकदृष्ट पदार्थों के समान सब प्रकार से ज्ञातत्व। इयत्ता के सहित ज्ञात होने वाले पदार्थ सब प्रकार से ज्ञात कहे जाते हैं। ब्रह्मस्वरूप वैसा नहीं है इसलिए सब प्रकार से ज्ञात नहीं

टिप्पणी- 1. **नो न वेदेति वेद च** इति स्वोक्तवचनानुकरणम्।

कहा जाता अपितु किञ्चित् ज्ञात कहा जाता है। इससे परिच्छिन्न पदार्थों की अपेक्षा से उसका किञ्चित् ज्ञातत्व कहना स्पष्ट है। वस्तुतः उसका अन्य विशेषणों के सहित इयत्तारहितत्वेन ज्ञान कृत्स्न ज्ञान है। इस प्रकार कार्त्स्न्येन ज्ञातत्व से ब्रह्म का सकलेतरविलक्षणज्ञातृत्व कहा जाता है।

तृतीयो मन्त्रः

यस्यामतं तस्य मतं मतं यस्य न वेद सः।
अविज्ञातं विजानतां विज्ञातमविजानताम्॥ 3 ॥

अन्वय

यस्य अमतम्, तस्य मतम्। यस्य मतम्, सः न वेद। विजानताम् अविज्ञातम्, अविजानताम् विज्ञातम्।

अर्थ

यस्य- जिस मननकर्ता के (परिच्छिन्नरूप से) **अमतम्**- मनन का विषय ब्रह्म नहीं है, **तस्य**- उस का **मतम्**- मनन किया हुआ ब्रह्म है। **यस्य**- जिस ज्ञानी के (परिच्छिन्नरूप से)**मतम्**- मनन का विषय ब्रह्म है, **सः**- वह (ब्रह्म को)**न वेद**- नहीं जानता। (परिच्छिन्न रूप से) **विजानताम्**- जानने(ध्यान करने) वालों को **अविज्ञातम्**- ब्रह्म अज्ञात (ध्यान का विषय नहीं) है।(अपरिच्छिन्नरूप से) **अविजानताम्**- जानने वालों को **विज्ञातम्**- ब्रह्म ज्ञात है।

भाष्यम्

यस्यामतं तस्य मतं मतं यस्य न वेद सः- *यः (यस्तु) परिच्छिन्नत्वेन ब्रह्म न मनुते, स ब्रह्म मनुते। यस्तु परिच्छिन्नत्वेन ब्रह्म मनुते, स तु न जानातीत्यर्थः।* ***अविज्ञातं विजानतां विज्ञातमविजानताम्***- *ब्रह्म एतावदिति परिच्छेदज्ञानवतां ब्रह्माविज्ञातं भवति, परिच्छिन्नत्वज्ञानशून्यानां ब्रह्म विज्ञातं भवतीत्यर्थः। उक्तं च*

भगवता भाष्यकृता-'**यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह** (तै. उ. 2.1.1)इति ब्रह्मणोऽनन्तस्य अपरिमितगुणस्य वाङ्मनसयोः एतावदिति परिच्छेदायोग्यत्वश्रवणेन ब्रह्मैतावदिति ब्रह्मपरिच्छेदज्ञानवतां ब्रह्म अविज्ञातम् अमतमित्युक्तम्, अपरिच्छिन्नत्वाद् ब्रह्मणः। अन्यथा **यस्यामतं तस्य मतम्, विज्ञातम् अविजानताम्** इति तत्रैव मतत्वविज्ञातत्ववचनं विरुद्ध्येत' इति। ततश्चाविज्ञातत्वादिवचनं कार्त्स्न्येन ज्ञानाविषयत्वपरम्, न तु सर्वात्मना ब्रह्मणः ज्ञानागोचरत्वपरमिति द्रष्टव्यम्। तथा हि सति **ब्रह्मविदाप्नोति परम्** (तै.उ.2.4.1,2.9.1), **तमेव विदित्वातिमृत्युमेति** (श्वे.उ.3.8) इत्यादि शास्त्राणामसंगतार्थकत्वप्रसङ्गात्, वेदान्तानां नैरर्थक्यप्रसङ्गाच्च।3।

व्याख्या

यस्य........ सः -जो ब्रह्म का परिच्छिन्नत्वेन मनन नहीं करता है, वह ब्रह्म का मनन करता है किन्तु जो ब्रह्म का परिच्छिन्नत्वेन मनन करता है, वह तो उसे नहीं जानता। यह प्रस्तुत मन्त्र के पूर्वार्ध का अर्थ है। **अविज्ञातम्.........विजानताम्**-ब्रह्म इतना है, इस प्रकार परिच्छेद जानने वालों को ब्रह्म अज्ञात होता है। अपरिच्छेद जानने वालों को ब्रह्म ज्ञात होता है, यह मन्त्र के उत्तरार्ध का अर्थ है और इस विषय में भगवान् भाष्यकार ने कहा है-'मन के सहित वाणी विना प्राप्त किए जहाँ से वापस आ जाती है।' इस श्रुति से वाणी और मन के अविषय अपरिमितगुण वाले अनन्त ब्रह्म के 'इतना है', इस प्रकार परिच्छेद की अयोग्यता सुने जाने से 'ब्रह्म इतना है,' इस प्रकार परिच्छेद जानने वालों को वह अविज्ञात और अमत है,' यह कथन होता है क्योंकि ब्रह्म का अपरिच्छिन्नत्व है, अन्यथा (ब्रह्म को मनन और ध्यान का अविषय ही मानने पर) 'जिसका अमत(मनन न किया) ब्रह्म है, उसका मत(मनन किया) ब्रह्म है।' 'न जानने वालों को ब्रह्म ज्ञात है।' इस प्रकार वहाँ ही ब्रह्म के मतत्व और ज्ञातत्व का कथन पूर्व कथन से विरुद्ध होगा और

उस कारण अविज्ञातत्व और अमतत्व का कथन घटादि के समान परिच्छेदसहितत्वेन ज्ञान के अविषयत्व का बोधक है किन्तु ब्रह्म के सर्वथा ज्ञानाविषयत्व का बोधक नहीं है क्योंकि वैसा मानने पर 'ब्रह्मवेत्ता ब्रह्म को प्राप्त करता है।' 'ब्रह्म को जानकर ही मृत्यु का अतिक्रमण होता है।' इत्यादि शास्त्रवचनों के असंगत अर्थ होने का प्रसङ्ग होता है और ऐसा मानने पर उन वेदान्तवाक्यों की अनर्थकता का भी प्रसङ्ग होता है।

श्रवण

श्रोत्रिय-ब्रह्मनिष्ठ गुरु के मुख से वेदान्त वाक्यों के युक्तियुक्त यथार्थ अर्थ को जानना श्रवण कहलाता है - **श्रवणं नाम न्यायसहकृतस्य तत्त्वार्थस्य गुरुमुखात् ग्रहणम्।**

मनन

'श्रवण किया हुआ अर्थ युक्तिसंगत है या युक्ति रहित' इस प्रकार विचारपूर्वक किया जाने वाला निर्णयात्मक ज्ञान मनन कहलाता है - **श्रुतार्थविषयकयुक्तायुक्तविचारपूर्वकं निर्णयरूपज्ञानं मननम्।**

निदिध्यासन

विजातीय वृत्तियों के व्यवधान से रहित तैल की धारा के समान न टूटने वाली ध्येय के आकार की वृत्तियों का निरन्तर प्रवाह निदिध्यासन कहलाताहै-**विजातीयप्रत्ययान्तराव्यवहिततैलधारावदविच्छिन्न-स्मृतिसन्ततिरूपं निदिध्यासनम्।**

श्रवण, मनन और निदिध्यासन ये तीनों ज्ञान ही हैं। ऊपर द्वितीय मन्त्र में परिच्छेद के सहित श्रवण का अविषय ब्रह्म कहा गया। श्रवण के पश्चात् मनन और निदिध्यासन होते हैं, इसलिए अब तृतीय मन्त्रमें ब्रह्म को परिच्छिन्नत्वेन मनन और निदिध्यासन का अविषय कहा जा रहा है- जिस मननकर्ता के अपरिच्छिन्नत्वेन मनन का विषय ब्रह्म है, उसने वस्तुतः ब्रह्म का मनन कर लिया किन्तु जिस ज्ञानी के परिच्छिन्नत्वेन

मनन का विषय ब्रह्म है, वह ब्रह्म को जानता ही नहीं है, इसी प्रकार सीमितरूप से निदिध्यासन करनेवालों को ब्रह्म अज्ञात है और असीमितरूप से निदिध्यासन करनेवालों को ज्ञात है। ब्रह्म अपरिच्छिन्न है, इसलिए अपरिच्छिन्नरूप से ही उसका मनन और निदिध्यासन होता है, परिच्छिन्न रूप से नहीं होता। जो परिच्छेदसहित किसी वस्तु को जानता है, वह उसके परिच्छेद को भी जानता है, इसी अभिप्राय से कहा है कि परिच्छेद जानने वालों को ब्रह्म अज्ञात है।

भाष्य में अनन्त पद से ब्रह्मस्वरूप की अपरिच्छिन्नता कही जाती है और अपरिमितगुण से उसके गुणों की अपरिच्छिन्नता। ब्रह्मस्वरूप अनन्त है और उसके गुण भी अनन्त हैं इसलिए 'ब्रह्म इतना है।', 'उसके गुण इतने हैं।' इस प्रकार वाणी और मन के परिच्छिन्नत्वेन अविषय ब्रह्मस्वरूप और उसके गुण परिच्छेद के अयोग्य हैं अर्थात् वाणी से उनका परिच्छिन्नत्वेन प्रतिपादन नहीं किया जा सकता और मन से परिच्छिन्नत्वेन ज्ञान नहीं हो सकता। इसी अभिप्राय की बोधक - **यतो वाचो निवर्तन्ते, अप्राप्य मनसा सह।** (तै.उ.2.9.1) यह तैत्तिरीय श्रुति है। प्रस्तुत केनमन्त्र परिच्छिन्नरूप से ब्रह्म को जानने वालों के लिए ब्रह्म को अमत और अविज्ञात कहता है क्योंकि वह परिच्छेदरहित है इसलिए वह परिच्छेदरहितरूप में मत और विज्ञात होता है, परिच्छिन्नरूप से नहीं। ब्रह्म को अपरिच्छिन्नरूप से भी ज्ञान का अविषय स्वीकार करने पर **यस्यामतं तस्य मतम् विज्ञातम् अविजानताम्** इस प्रकार ज्ञानविषयत्व के बोधक मतत्व और विज्ञातत्व कथन से विरोध होगा इस लिए ब्रह्म के अमतत्व और अविज्ञातत्व का कथन उसके परिच्छिन्नरूप से ज्ञान के अविषय होने का बोधक है। सर्वथा अविषय होने का बोधक नहीं है, ऐसा जानना चाहिए।

अपरिच्छिन्न ब्रह्म तो ज्ञान का विषय है, उसकी परिच्छिन्नता विषय नहीं है। ब्रह्म को सर्वथा ज्ञान का अविषय मानने पर **यतो वाचो**

श्रुति से पूर्वपठित ब्रह्मवेत्ता पर को प्राप्त करता है- **ब्रह्मविदाप्नोति परम्।**(तै.उ.2.1.1) तथा उत्तर पठित **आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् न बिभेति कुतश्चन।** (तै.उ.2.9.1) इत्यादि वाक्यों से विरोध होता है क्योंकि पूर्व में ब्रह्मवित् पद ही ब्रह्म के वेद्यत्व का प्रतिपादन करता है और उत्तर में ब्रह्मानन्द वेद्य कहा गया है। ब्रह्म को अवेद्य मानने पर **ब्रह्मविदाप्नोति परम्** (तै.उ.2.1.1) तथा 'ब्रह्म को जानकर ही मृत्यु का अतिक्रमण होता है' - **तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति।** (श्वे.उ.3.8) इत्यादि श्रुति वाक्यों के अर्थ की असंगति का प्रसङ्ग होता है और ऐसा होने पर उनकी व्यर्थता का भी प्रसङ्ग होता है। यदि कहना चाहें कि अज्ञान के नाश के लिए केवल वृत्तिव्याप्ति ब्रह्म में होती है, फलव्याप्ति नहीं होती अतः ब्रह्म वेद्य नहीं है, तो यह कथन भी उचित नहीं है क्योंकि केवल वृत्ति जड़ होने के कारण उससे अज्ञान का नाश नहीं होता है, ज्ञान से ही अज्ञान का नाश होता है। फल (ज्ञान) से युक्त हुए विना वृत्ति किसी वस्तु के आकार की नहीं हो सकती है, अतः वृत्ति को ब्रह्म के आकार की होने से फलव्याप्ति स्वतः सिद्ध हो जाती है, इस प्रकार ब्रह्म वेद्य ही सिद्ध होता है। इससे 'स्वयंप्रकाश वस्तु वेद्य नहीं होती,' यह कथन भी निरस्त हो जाता है।

चतुर्थो मन्त्रः

प्रतिबोधविदितम् अमृतम्[1] अमृतत्वं हि विन्दते।
आत्मना विन्दते वीर्यं विद्यया विन्दतेऽमृतम्।। 4 ।।

अन्वय

प्रतिबोधविदितम् हि अमृतम् अमृतत्वं विन्दते। आत्मना वीर्यम्

टिप्पणी- 1. अत्र 'मतम्' इति पाठान्तरः।

विन्दते। विद्यया अमृतम् विन्दते।

अर्थ

प्रतिबोधविदितम्- प्रेरकत्व आदि धर्मों के सहित ज्ञात हि प्रसिद्ध **अमृतम्**- अमृतस्वरूप परमात्मा **अमृतत्वम्**- मोक्ष की **विन्दते** प्राप्ति कराता है। **आत्मना**- परमात्मा से **वीर्यम्**- (ब्रह्मविद्या की निष्पत्ति के अनुकूल) सामर्थ्य **विन्दते**- प्राप्त होता है। **विद्यया**- ब्रह्मविद्या से **अमृतम्** - मोक्ष **विन्दते** - प्राप्त होता है।

भाष्यम्

प्रतिबोधविदितम् अमृतम् अमृतत्वं हि विन्दते- प्रतिनियत बोध: ***प्रतिबोध:***। सत्यत्वज्ञानत्वानन्तत्वादिरूपासाधारणधर्मविशिष्टतया ज्ञातम् ***अमृतं*** ब्रह्मस्वरूपं तत्क्रतुन्यायेन[1] स्वोपासकस्याप्यमृतत्वं ***विन्दते***-लम्भयतीत्यर्थ:। अन्तर्भावितण्यर्थोऽयं विदिधातु: लम्भनप्रकारमेवाह-***आत्मना विन्दते वीर्यं विद्यया विन्दतेऽमृतम्।*** ***'स नो देव: शुभया स्मृत्या संयुनक्तु'*** (तै.ना.उ.84) इत्युक्तरीत्या विद्यानिष्पत्त्यनुकूलं वीर्यं प्रसन्नेन परमात्मना लभते। प्रसन्नपरमात्माऽऽहितवीर्यार्जितया विद्यया अमृतत्वमश्नुत इत्यर्थ:॥4॥

व्याख्या

ब्रह्मविद्या से मोक्ष

प्रतिबोधविदितम्.........- प्रतिनियत बोध अर्थात् बोधक

टिप्पणी- 1. छान्दोग्योपनिषत्(3.14.1) में तत्क्रतुन्याय वर्णित है। उपासना को क्रतु कहते हैं। उपासक जिस गुणविशिष्ट आराध्य की उपासना करता है, मरकर उसी को प्राप्त करता है, यही तत्क्रतुन्याय कहलाता है। अमृतत्व गुण से विशिष्ट की उपासना करने वाला मरकर परमात्मा के द्वारा तत्क्रतुन्याय से अमृतत्व अर्थात् मोक्ष को प्राप्त करता है। सकल बन्धनों से विनिर्मुक्त होकर सतत् परमात्मा का अनुभव करना ही मोक्ष है।

असाधारण धर्म को प्रतिबोध कहते हैं। सत्यत्व,, ज्ञानत्व, अनन्तत्वादिरूप असाधारणधर्मविशिष्टत्वेन ज्ञात होने वाला **अमृतम्**- ब्रह्मस्वरूप तत्क्रतुन्याय से अपने उपासक को मोक्ष की **विन्दते**- प्राप्ति कराता है, यह अर्थ है। (विद् धातु का अर्थ प्राप्त करना है तो प्राप्त कराना अर्थ कैसे संभव होता है, ऐसी शंका होने पर कहते हैं।)- अन्तर्भावित णिच् के अर्थ वाली यह विद् धातु है। मोक्षप्राप्त करने की रीति को ही कहते हैं-परमात्मा से सामर्थ्य प्राप्त होता है, ब्रह्मविद्या से मोक्ष प्राप्त होता है।। 'वह परमात्मदेव हम सबको ब्रह्मविद्या से युक्त करे।' इस प्रकार कही रीति से ब्रह्मविद्या की निष्पत्ति के अनुकूल सामर्थ्य प्रसन्न हुए परमात्मा से प्राप्त होता है। प्रसन्न हुए परमात्मा से प्राप्त सामर्थ्य के द्वारा अर्जित की गयी ब्रह्मविद्या से मोक्ष प्राप्त होता है, यह मन्त्र के उत्तरार्ध का अर्थ है।।

जिसके द्वारा बोध होता है- **बुध्यते अनेन इति बोधः,** इस प्रकार बोध का अर्थ होता है - बोधक धर्म, प्रतिबोध का अर्थ होता है- बोधक असाधारण धर्म और प्रतिबोधविदित का अर्थ है - असाधारण धर्मों के सहित ज्ञात। जैसे - इस उपनिषत् के आरम्भ में मन आदि के प्रेरक की जिज्ञासा की गयी और **श्रोत्रस्य श्रोत्रम्** इत्यादि प्रकार से प्रेरक को समझाया गया। प्रेरणा करने वाला अर्थात् प्रेरकत्व धर्मवाला परमात्मा है। प्रेरकत्वेन परमात्मा का बोध होता है। परमात्मा सत्यत्व, ज्ञानत्व और अनन्तत्व धर्मों से भी विशिष्ट है- **सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म**(तै.उ. 2.1.1) प्रेरकत्व आदि धर्मों के सहित ज्ञात परमात्मा अमृतस्वरूप अर्थात् निरतिशय सुखरूप हैं। वे ब्रह्मविद्यानिष्ठ को मोक्ष की प्राप्ति कराते हैं।। मोक्ष की साधन ब्रह्मविद्या है, वह उसकी निष्पत्ति के अनुकूल मन के सामर्थ्य के विना संभव नहीं अतः भगवती श्रुति कहती है - **आत्मना विन्दते वीर्यम्**। वीर्य का अर्थ है- सामर्थ्य। मन की एकाग्रता ही वह सामर्थ्य है। निष्काम कर्म से प्रसन्न हुए भगवान् ही सामर्थ्य प्रदान करते हैं। सामर्थ्य होने पर श्रवण, मनन कर चुके साधक को ब्रह्मविद्या की निष्पत्ति होती है और ब्रह्मविद्या से मोक्ष होता है।

पञ्चमो मन्त्रः

इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति
न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः
भूतेषु भूतेषु विचित्य धीराः
प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति॥ 5 ॥

अन्वय

चेद् इह अवेदीत्, अथ अस्ति। चेद् इह सत्यं न अवेदीत्, महती विनष्टिः। धीराः भूतेषु भुतेषु विचित्य प्रेत्य अस्माद् लोकात् अमृताः भवन्ति।

अर्थ

चेत्- यदि **इह**- इस जन्म में (ब्रह्म को) **अवेदीत्**- जान लिया तो **अथ**- तुरन्त **अस्ति**- मोक्षप्राप्ति है। **चेत्**- यदि **इह**- इस जन्ममें **सत्यम्**- ब्रह्म को **न**- नहीं **अवेदीत्**- जाना तो **महती**- अत्यन्त **विनष्टिः**- हानि है। **धीराः**- उपासक **भूतेषु भूतेषु**- सभी भूतों में अन्तर्यामीरूप से स्थित परमात्मा का **विचित्य**- साक्षात्कार करके **अस्मात्**- इस **लोकात्**- लोक से (अर्चिरादिमार्ग द्वारा त्रिपाद विभूति में जाकर परमात्मा को) **प्रेत्य**- प्राप्त करके **अमृताः**- मुक्त **भवन्ति**- हो जाते हैं।

भाष्यम्

तादृशब्रह्मज्ञाने त्वराम् उत्पादयति-***इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः।*** *इहैव जन्मनि ब्रह्म ज्ञातवांश्चेत्,* ***अथ***- *समनन्तरमेव* ***अस्ति*** - *सन् भवति। सत्य (अत्र) ज्ञानाभावे आत्मनोऽसत्ता भवति,* ***असन्नेव स भवति, असद् ब्रह्मेति वेद चेत्। अस्ति ब्रह्मेति चेद् वेद सन्तमेनं ततो विदुः***(तै.उ. 2.6.1)

इति श्रुत्यनुरोधादिति द्रष्टव्यम्। **भूतेषु भूतेषु विचित्य धीराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति। भूतेषु भूतेषु** –सर्वभूतस्थं परमात्मानं प्रज्ञाशालिनः स्वेतरसमस्तविलक्षणत्वेन निर्धार्य अस्माल्लोकादर्चिरादिमार्गेण परमात्मानं प्राप्य मुक्ता भवन्तीत्यर्थः।5।

व्याख्या

ब्रह्मविद्या शीघ्र सम्पाद्य

आचार्य मोक्ष के साधन ब्रह्मज्ञान में शिष्य को शीघ्र प्रवृत्त होने के लिए प्रेरित करते हैं– यदि इस जन्म में ब्रह्म को जान लिया तो शीघ्र मोक्षप्राप्ति है और यदि इस जन्म में ब्रह्म को नहीं जाना तो घोर हानि है।। **इह**– इस जन्म में ही यदि ब्रह्म को जान लिया तो इसी से **अथ**– तुरन्त **अस्ति**–मोक्षप्राप्ति होती है। ब्रह्मज्ञान के न होने पर आत्मा की अधोगति होती है। 'यदि ब्रह्म को नहीं जानता है तो वह अधोगामी होता है। यदि ब्रह्म को जानता है, तो (ज्ञानी पुरुष) इसे मोक्ष प्राप्त करने वाला कहते हैं।' इस तैत्तिरीय श्रुति के अनुरोध से प्रस्तुत केन श्रुति का उक्त अर्थ होता है, ऐसा जानना चाहिए। **भूतेषु भूतेषु.....**उपासक सभी प्राणियों में स्थित अपने(परमात्मा)से भिन्न सभी से विलक्षण परमात्मा का साक्षात्कार करके इस लोक से अर्चिरादिमार्ग द्वारा अप्राकृत लोक में जाकर परमात्मा को प्राप्त करके मुक्त हो जाते हैं, यह मन्त्र के उत्तरार्ध का अर्थ है।

प्रस्तुत केनमन्त्र और भाष्य में उद्धृत तैत्तिरीय मन्त्र दोनों का अभिप्राय एक है इसलिए भाष्यकार रङ्ग रामानुज मुनि ने तैत्तिरीय श्रुति के अनुसार उक्त केनश्रुति का अर्थ किया है। भगवान् रामानुजाचार्य ने श्रीभाष्य में कहा है कि **असन्नेव स भवति** (तै.उ.2.6.1)यह श्रुति ब्रह्मविद्या के न होने से आत्मा की अधोगति और विद्या के होने से मोक्षप्राप्ति को कहती है– **असन्नेव स भवति ………. इति ब्रह्मविषयज्ञानासद्भावसद्भावाभ्याम् आत्मनाशम् आत्मसत्ताञ्च**

वदति।(श्रीभा.1.1.1) ब्रह्मविद्यानिष्ठ साधक सभी भूतों में स्थित परमात्मा का स्वेतरसर्वविलक्षणत्वेन प्रत्यक्ष कर और अर्चिरादिमार्ग से प्राप्त कर मुक्त हो जाते हैं।

।। द्वितीय खण्ड समाप्त ।।

तृतीय खण्ड

प्रथमो मन्त्रः

ब्रह्म ह देवेभ्यो विजिग्ये।
तस्य ह ब्रह्मणो विजये देवा अमहीयन्त।
त ऐक्षन्त, अस्माकमेवायं विजयोऽस्माकमेवायं महिमेति।। 1 ।।

अन्वय

ह ब्रह्म देवेभ्यः विजिग्ये। तस्य ह ब्रह्मणः विजये देवाः अमहीयन्त। अयम् विजयः अस्माकम् एव अयम् महिमा अस्माकम् एव इति ते ऐक्षन्त।

अर्थ

ह- वास्तव में **ब्रह्म**- परमात्मा ने **देवेभ्यः**- देवताओं पर अनुग्रह करने के लिए (असुरों पर) **विजिग्ये**- विजय प्राप्त की। **तस्य**- देवताओं पर अनुग्रह करने वाले **ह**- प्रसिद्ध **ब्रह्मणः**- परमात्मा की **विजये**- विजय होने पर **देवाः**- देवता **अमहीयन्त**- सम्मानित हुए। **अयम्**- यह **विजयः**- विजय **अस्माकम्**- हमारी **एव**- ही है, **अयम्**- यह **महिमा**- सामर्थ्य **अस्माकम्**- हमारा **एव**- ही है **इति**- ऐसा **ते**- उन देवताओं ने **ऐक्षन्त**- माना।

भाष्यम्

आत्मना विन्दते वीर्यम् इत्युक्तार्थे आख्यायिकामाह-**ब्रह्म ह**

देवेभ्यो विजिग्ये-परमात्मा देवानामनुग्रहार्थम् असुरादीन् शत्रून् विजितवान्। **तस्य ह ब्रह्मणो विजये देवा अमहीयन्त**- ब्रह्मकर्तृकविजये सति देवाः पूजिता अभवन्। **त ऐक्षन्त, अस्माकमेवायं विजयोऽस्माकमेवायं महिमेति**-देवाः 'अयमसुरविजयोऽस्मत्कर्तृक एव, तदनुकूलसामर्थ्यादिकमप्यस्मदीयमेव' इत्यमन्यन्त॥1॥

व्याख्या

परमात्मा की विजय और देवताओं का अंहकार

परमात्मा से सामर्थ्य प्राप्त होता है, इस प्रकार प्रोक्त विषय में कथानक को कहते हैं-**ब्रह्म ह.....**-परमात्मा ने देवताओं पर अनुग्रह करने के लिए असुरादि शत्रुओं को जीत लिया। **तस्य ह....**-परमात्मा की विजय होने पर देवता सम्मानित हुए। **त ऐक्षन्त.....**-देवताओं ने 'असुरों पर यह विजय हमने ही प्राप्त की है, उसके अनुकूल सामर्थ्य भी हमारा ही है।' ऐसा मान लिया।।

देवासुर संग्राम में भगवान् ने देवताओं को विजयी बनाने के लिए असुरों का संहार किया। इस प्रकार वास्तव में विजय तो परमात्मा की हुई किन्तु इस रहस्य को सामान्य प्राणी और देवता भी नहीं समझ सके इसलिए परमात्मा की विजय होने पर सभी ने इन्द्रादि देवताओं को विजयी समझकर पूजा की, इससे देवताओं में अहंकार हो गया और वे मानने लगे कि यह हमारी ही विजय है और विजय के अनुकूल शक्ति भी हमारी है।

द्वितीयो मन्त्रः

तद्धैषां विजज्ञौ। तेभ्यो ह प्रादुर्बभूव।

तन्न व्यजानत किमिदं यक्षमिति॥ 2 ॥

अन्वय

एषाम् ह विजज्ञौ, ह तत् तेभ्यः प्रादुर्बभूव इदम् किम् इति यक्ष तत् न व्यजानत्।

अर्थ

भगवान् ने **एषाम्**- देहात्मबुद्धि वाले देवताओं के **ह**- प्रसिद्ध अहंकार को **विजज्ञौ**- जान लिया। **ह**- प्रसिद्ध **तत्**- ब्रह्म **तेभ्यः**- देवताओं पर अनुग्रह करने के लिए **प्रार्दुबभूव**- (यक्षरूपसे) प्रगट हुआ **इदम्**- यह **किम्**- कौन है? **इति**- इस प्रकार(देवता) **यक्षम्**- यक्षरूपधारी **तत्**- ब्रह्म को **न**- नहीं **व्यजानत**- जान सके।

भाष्यम्

तद्धैषां विजज्ञौ-*तादृशं तेषामभिमानं परमात्मा ज्ञातवान् इत्यर्थः।* ***तेभ्यो ह प्रादुर्बभूव***-*तेषां देवानामनुग्रहार्थ तत् ब्रह्म यक्षरूपं प्रादुर्भूतम्।* ***तन्न व्यजानत किमिदं यक्षमिति***-*एतद् यक्षस्वरूपं किमिति ते देवा* ***न व्यजानत***- *न ज्ञातवन्त इत्यर्थः।।2।।*

व्याख्या

देवताओं पर अनुग्रह

तदधैपां विजज्ञौ-देवताओं के वैसे अभिमान को परमात्मा ने जान लिया। **तेभ्यो ह......**-अहंकारी देवताओं पर अनुग्रह करने के लिए वह ब्रह्म यक्षरूप से प्रकट हुआ। **तन्न व्यजानत.....**यह यक्षरूपधारी कौन है? इस प्रकार वे देवता **न व्यजानत**- नहीं जान सके।

मेरे भक्त का पतन नहीं होता है - **न मे भक्तः प्रणश्यति** (गी. 9.31) ऐसा करुणावरुणालय भक्तवत्सल भगवान् ने स्वयं कहा है।। वे अपने भक्त का पतन नहीं सहन कर सकते हैं अतः भगवान् देवताओं पर करुणा करके उनका अहंकार नष्ट करने के लिए उनके समक्ष दिव्य यक्षरूप से प्रकट हो गये किन्तु वे उन्हें पहचान नहीं सके।

तृतीयः चतुर्थश्च मन्त्रः

तेऽग्निमब्रुवन्, जातवेदः! एतद् विजानीहि,
किमेतद् यक्षमिति, तथेति॥ 3 ॥
तदभ्यद्रवत् तमभ्यवदत्, कोऽसीति?
अग्निर्वा अहमस्मीत्यब्रवीत्,
जातवेदा वा अहमस्मीति॥ 4॥

अन्वय

ते अग्निम् इति अब्रुवन्, जातवेदः! एतद् विजानीहि, एतद् यक्षम् किम्, तथा इति।तद् अभ्यद्रवत्, तम् इति अभ्यवदत्, कः असि, अहम् वै अग्निः अस्मि इति अब्रवीत्। अहम् वै जातवेदा अस्मि इति।3-4।

अर्थ

ते- देवताओं ने **अग्निम्**- अग्नि को **इति**- इस प्रकार **अब्रुवन्**- कहा (कि) **जातवेदः**- हे जातवेद! **एतद्**- इसे **विजानीहि**- विशेषरूप से जानो। **एतद्**- यह **यक्षम्**- यक्ष **किम्**- कौन है? (अग्नि ने कहा) **तथा**- वैसा ही (कर रहा हूँ।) इति।अग्नि देवता **तद्**- यक्षके **अभ्यद्रवत्**- समीप आया। (यक्ष ने) **तम्**- अग्नि को **इति**- इसए प्रकार **अभ्यवदत्**- कहा (कि तुम) **कः**- कौन **असि**- हो? **अहम्**- मैं **वै** - प्रसिद्ध **अग्निः**- अग्नि **अस्मि**- हूँ **इति**- इस प्रकार (अग्नि देवता ने) **अब्रवीत्**- कहा। **अहम्**- मैं **वै**- प्रसिद्ध **जातवेदा**- जातवेदा **अस्मि**- हूँ **इति**- इस प्रकार भी कहा।

भाष्यम्

तेऽग्निम्...............यक्षमिति-*जातवेदः एतद् विजानीहि किमेतद् यक्षमितीत्युक्तवन्तः।* ***तथेति। तदभ्यद्रवत्*** *...........**अहमस्मीति**। तथेति स यक्षसमीपं गतः,तेन कोऽसि? इति पृष्टः अग्निः जातवेदाः इति प्रसिद्धं नामद्वयमुक्तवान् इत्यर्थः।।3-4।।*

व्याख्या

देवताओं का अग्नि से संवाद

तेऽग्निम्.....-हे अग्नि! इसे जानो, यह यक्षरूपधारी कौन है? ऐसा देवताओं ने अग्नि से कहा। अग्नि ने उत्तर दिया कि **तथेति**-मैं वैसा ही करता हूँ।

अग्नि और यक्ष का संवाद

अग्नि देवता यक्ष के समीप गया, यक्ष के द्वारा तुम कौन हो? ऐसा पूछे जाने पर उसने अग्नि और जातवेद इन दो प्रसिद्ध नामों को कहा, यह मन्त्र का अर्थ है।

पञ्चमो मन्त्रः

तस्मिंस्त्वयि किं वीर्यमिति। अपीदं सर्वं
दहेयम् यदिदं पृथिव्यामिति॥ 5 ॥

अन्वय

तस्मिन् त्वयि किम् वीर्यम्? इति, पृथिव्याम् इदम् यत्, इदम् सर्वम् अपि दहेयम् इति।

अर्थ

तस्मिन्- अग्नि और जातवेद इन दो नामों से प्रसिद्ध **त्वयि**- आपमें **किम्**- क्या **वीर्यम्**- सामर्थ्य है? **इति**- ऐसा यक्ष ने पूँछा। **पृथिव्याम्**- पृथिवी पर **इदम्**- यह **यत्**- जो वस्तु है। **इदम्**- इस **सर्वम्**- सभी को **अपि**- भी (मैं)**दहेयम्**- जला सकता हूँ **इति**- ऐसा अग्नि ने कहा।

भाष्यम्

तस्मिंस्त्वयि किं वीर्यमिति? अपीदं सर्वं दहेयम् यदिदं पृथिव्यामिति। *तव क्व सामर्थ्यमस्तीति यक्षेण पृष्टोऽग्निः पृथिव्यन्तर्वर्तिसकलदाहसामर्थ्यम् अस्तीति उक्तवान्।।5।।*

व्याख्या

तस्मिंस्त्वयि......किस कार्य को करने में आपका सामर्थ्य है? ऐसा यक्ष के द्वारा पूछे जाने पर 'मुझमें पृथ्वी में विद्यमान सम्पूर्ण पदार्थों को जलाने का सामर्थ्य है' ऐसा अग्नि ने यक्ष को कहा।

षष्ठो मन्त्रः

तस्मै तृणं निदधौ, एतद् दहेति।
तदुपप्रेयाय सर्वजवेन। तन्न शशाक दग्धुम्।
स तत एव निववृते, नैतदशकं विज्ञातुम्,
यदेतद् यक्षमिति॥ 6 ॥

अन्वय

तस्मै तृणं निदधौ, एतद् दह इति। सर्वजवेन तद् उपप्रेयाय। तद् दग्धुम् न शशाक। स ततः एव निववृते। एतद् यत् यक्षम् एतद् विज्ञातुम् न अशकम् इति।

अर्थ

यक्ष ने **तस्मै**- अग्नि के लिए **तृणम्**- तृण को **निदधौ**- रखा (और) **एतद्**- इसे **दह**- जलाओ **इति**- ऐसा कहा। अग्निदेवता जलाने के लिये **सर्वजवेन**- पूर्णवेग से **तत्**- तृण के **उपप्रेयाय**- समीप गया (किन्तु) **तत्**- तृण को **दग्धुम्**- जलाने में **न शशाक**- समर्थ नहीं हो सका। **सः**- अग्नि **ततः**- तृण को जलाने में असमर्थ होने के कारण **एव**- ही (लज्जित होकर देवताओं के पास) **निववृते**- लौट आया। **एतद्**- यह **यत्**- जो **यक्षम्**- यक्ष है **एतद्**- इसे **विज्ञातुम्**- जानने में **न अशकम्** - समर्थ नहीं हो सका **इति** - ऐसा अग्नि ने देवताओं को बताया।

भाष्यम्

तस्मै....................निववृते-*तर्हीदं तृणं दहेति यक्षेण उक्तः*

सर्वेण जवेन तत्समीपं गतः, दग्धुमसमर्थो निवृत्त इत्यर्थः। **उपप्रेयाय**-*समीपं गत इत्यर्थः।* ***नैतदशकं विज्ञातुम्, यदेतद् यक्षमिति,*** *एवं देवान् प्रति उक्तवान् इति शेषः। एवमुत्तरत्रापि॥6॥*

व्याख्या

अग्निदेवता का पराभव

तस्मै....-तो इस तृण को जलाओ, ऐसा यक्ष के द्वारा कहने पर अग्नि देवता सम्पूर्ण वेग से तृण के समीप गया किन्तु उसे जलाने में असमर्थ होने के कारण वापस आ गया। **उपप्रेयाय**-समीप गया, यह अर्थ है। जो यह यक्ष है, इसे जानने में मैं समर्थ नहीं हो सका, 'ऐसा अग्नि ने देवताओं से कहा' यह शेष है।(एवं देवान् प्रति उक्तवान् यह शेष वाक्य है, इसे मिलाकर श्रुति का अर्थ करना चाहिए।) इसी प्रकार अग्रिम मन्त्रों की व्याख्या जाननी चाहिए।

सप्तमो मन्त्रः

वायुमब्रुवन् वायवेतद् विजानीहि
किमेतद् यक्षमिति! तथेति ॥ 7 ॥

अन्वय

अथ वायुम् इति अब्रुवन्, वायो! एतद् विजानीहि, एतद् यक्षम् किम्? तथा इति।

अर्थ

देवताओं का वायु से संवाद

अथ- अग्नि का उत्तर सुनने के पश्चात् (देवताओं ने) **वायुम्**- वायुदेवता को **इति**- इस प्रकार **अब्रुवन्**- कहा, **वायो**- हे वायु! **एतद्**- इस बात को **विजानीहि**- विशेष रूप से जानो (कि) **एतद्**- यह **यक्षम्**- यक्ष **किम्**- कौन है? **तथा**- वैसा ही करता हूँ **इति**- इस प्रकार

वायु ने उत्तर दिया।

अष्टमो मन्त्रः

तदभ्यद्रवत्। तमभ्यवदत्, कोऽसीति?

वायुर्वा अहमस्मीत्यब्रवीत्, मातरिश्वा वा अहमस्मीति॥8॥

अन्वय

तद् अभ्यद्रवत्। कः असि, इति तम् अभ्यवदत्। अहम् वै वायुः अस्मि इति अब्रवीत्। अहम् वै मातरिश्वा अस्मि इति।

अर्थ

वायु और यक्ष का संवाद

वायुदेवता **तद्**- यक्ष के **अभ्यद्रवत्**- समीप गया। तुम **कः**- कौन **असि**- हो? **इति**- ऐसा (यक्ष ने) **तम्**- वायु को **अभ्यवदत्**- पूँछा। **अहम्**- मैं **वै**- प्रसिद्ध **वायुः**- वायु **अस्मि**- हूँ **इति**- ऐसा (वायु ने) **अब्रवीत्**- उत्तर दिया। **अहम्**- मैं **वै**- प्रसिद्ध **मातरिश्वा**- मातरिश्वा **अस्मि**- हूँ **इति**- ऐसा वायु ने उत्तर दिया।

नवमो मन्त्रः

तस्मिंस्त्वयि किं वीर्यमिति। अपीदं सर्वमाददीयम्,

यदिदं पृथिव्याम् इति॥ 9 ॥

अन्वय

तस्मिन् त्वयि किम् वीर्यम् इति। पृथिव्याम् इदम् यत्, इदम् सर्वम् अपि आददीयम् इति।

अर्थ

तस्मिन्- वायु और मातरिश्वा इन नामों से विख्यात **त्वयि**- आप में **किम्**- क्या **वीर्यम्**- सामर्थ्य है **इति** - ऐसा यक्ष ने पूँछा। **पृथिव्याम्**- पृथ्वी में **इदम्**- यह **यत्**- जो पदार्थ है **इदम्**- इस **सर्वम्**- सभी को

अपि- भी **आददीयम्**- लेकर उड़ाने में समर्थ हूँ **इति**- ऐसा वायु ने उत्तर दिया।

दशमो मन्त्रः

तस्मै तृणं निदधौ, एतदादत्स्वेति।
तदुपप्रेयाय सर्वजवेन। तन्न शशाकाऽऽदातुम्।
स तत एव निववृते, नैतदशकं विज्ञातुम्, यदेतद् यक्षमिति ॥ 10 ॥

अन्वय

तस्मै तृणम् निदधौ, एतद् आदत्स्व इति। सर्वजवेन तद् उपप्रेयाय, तद् आदातुम् न शशाक। स ततः एव निववृते, एतद् यत् यक्षम्, एतद् विज्ञातुम् न अशकम् इति।

अर्थ

वायु का पराभव

यक्ष ने **तस्मै**- वायु के लिए **तृणम्**- तृण को **निदधौ**- रख दिया (और) **एतद्**- इसे **आदत्स्व**- हिलाओ **इति**- ऐसा कहा। वायु **सर्वजवेन**- सम्पूर्ण वेग से **तद्**- तृण के **उपप्रेयाय**- समीप गया (किन्तु) **तत्**- तृण को **आदातुम्**- हिलाने में **न शशाक**- समर्थ नहीं हो सका। **सः**- वायु **ततः**- हिलाने में भी असमर्थ होने के कारण लज्जित होकर **एव**- ही (देवताओं के पास) **निववृते**- लौट आया। **एतद्**- यह **यत्**- जो **यक्षम्**- यक्ष है, **एतद्**- इसे **विज्ञातुम्**- जानने में **न अशकम्**- समर्थ नहीं हो सका **इति**- ऐसा वायु ने देवताओं से कहा।

एकादशो मन्त्रः

अथेन्द्रमब्रुवन्, मघवन्नेतद् विजानीहि, किमेतद् यक्षमिति।
तथेति तदभ्यद्रवत्। तस्मात् तिरोदधे॥ 11 ॥

अन्वय

अथ इन्द्रम् इति अब्रुवन्, मघवन् एतद् विजानीहि, एतद् यक्षम् किम्, तथा इति। तद् अभ्यद्रवत्, तस्मात् तिरोदधे।

अर्थ

अथ- वायु के गर्वभङ्ग के पश्चात् (देवताओं ने) **इन्द्रम्**- इन्द्र को **इति**- इस प्रकार **अब्रुवन्**- कहा कि **मघवन्**- हे इन्द्र! **एतद्**- इसे **विजानीहि**- विशेष रूप से जानो (कि) **एतद्**- यह **यक्षम्**- यक्ष **किम्**- कौन है? **तथा**- वैसा ही करता हूँ **इति**- ऐसा कहकर (इन्द्र) **तद्**- यक्ष के **अभ्यद्रवत्**- समीप गया। **तस्मात्**- इन्द्र के समीप जाने से (यक्षरूपधारी भगवान्) **तिरोदधे**- अन्तर्धान हो गये।

भाष्यम्

तस्मात् तिरोदधे। तस्मात्- *मघोनस्सन्निधेः, एतस्य गर्वभङ्गो मा भूदिति तिरोहितम् अभवत् इत्यर्थः।। 11।।*

व्याख्या

तस्मात् तिरोदधे। तस्मात्- इन्द्र के समीप आने पर, अग्नि और वायु के समान इस त्रिलोकी के शासक का गर्वनाश न हो, यह समझकर यक्षरूपधारी भगवान् कृपा करके अन्तर्धान हो गये, प्रस्तुत मन्त्र का यह अर्थ है।

जैसे अग्नि और वायु ने यक्ष के समीप आकर अपने सामर्थ्य का वर्णन किया था किन्तु वे पूर्ण प्रयास करने पर भी पराभूत होने के कारण लज्जित होकर लौट गये थे। करुणानिधान भगवान् सार्वजनिकरूप से इन्द्र का गर्व नष्ट नहीं करना चाहते थे, यही उनके तिरोहित होने का कारण था।

द्वादशो मन्त्रः

स तस्मिन्नेवाकाशे स्त्रियमाजगाम
बहुशोभमानामुमां हैमवतीम्।
तां होवाच किमेतद् यक्षमिति ॥ 12 ॥

अन्वय

आकाशे तस्मिन् एव बहुशोभमानां हैमवतीम् स्त्रियम् उमाम् सः आजगाम ह ताम् उवाच एतद् यक्षम् किम्? इति।

अर्थ

जिस **आकाशे**- आकाश में (भगवान् यक्ष रूप से प्रकट हुए थे।) **तस्मिन्**- उस आकाश में **एव**- ही प्रकट हुई **बहुशोभमानां**- अत्यन्त शोभायमान **हैमवतीम्**- नगाधिराज हिमालय की पुत्री **स्त्रियम्**- देवी **उमाम्**[1]- उमा को देखकर **सः**- इन्द्र (उसके समीप) **आजगाम**- आया (और) **ह**- प्रसिद्ध **ताम्**- उस देवी से **उवाच**- पूँछा कि **एतद्**- यह **यक्षम्**- यक्ष **किम्**- कौन था?

भाष्यम्

स तस्मिन्............यक्षमिति-*तस्मिन्नेव प्रदेशे हिमवत्पुत्रीं बहुभिः आभरणैः शोभमानां पार्वतीं सर्वज्ञाम् इन्द्रानुग्रहाय प्रादुर्भूतां दृष्ट्वा तत्समीपमागत्य इयं सर्वं जानातीति मन्यमानः किमेतत् यक्षमिति पप्रच्छ इत्यर्थः।।12।।*

टिप्पणी- 1. कुछ विद्वान् 'उमाम्' यहाँ पर एक पद अथवा उ, माम् इस प्रकार भिन्न पद मानकर लक्ष्मीपरक अर्थ करते हैं। एक पद मानने पर (हैमवतीम् - सुवर्ण के आभूषण धारण करने वाली) उमाम् - उकार की वाच्य लक्ष्मी जी को ऐसा अर्थ करते हैं। भिन्न पद मानने पर माम् - लक्ष्मी को उ - ही ऐसा अर्थ करते है। इन्द्र और लक्ष्मी जी का संवाद महाभारत और लक्ष्मी तन्त्र में देखा जाता है।

व्याख्या

उमा का आविर्भाव

तस्मिन्नेव....-उसी आकाश में इन्द्र पर अनुग्रह करने के लिए प्रकट हुई बहुत आभूषणों से सुशोभित हिमालय की पुत्री सर्वज्ञा पार्वती को देखकर, उसके समीप में आकर 'यह सब जानती है।' ऐसा मानने वाले इन्द्र ने 'यह यक्ष कौन था,' ऐसा पूछा।

यक्ष का तिरोधान होने पर उसके कल्याण के लिए श्रीभगवान् से प्रेरित दिव्य वस्त्र और दिव्य आभूषणों से सुशोभित, लोकोत्तर सौन्दर्य वाली करुणामयी माता उमा देवी वहाँ प्रकट हुई। ये देवी यह रहस्य जानती हैं, ऐसा समझकर इन्द्र ने उनसे सविनय पूँछा कि पूर्व में दर्शन देकर तिरोहित होने वाला यक्ष कौन था?

तृतीय खण्ड समाप्त

चतुर्थः खण्डः

प्रथमो मन्त्रः

सा ब्रह्मेति होवाच, ब्रह्मणो वा एतद्विजये
महीयध्वम् इति। ततो हैव विदाञ्चकार ब्रह्मेति॥ 1 ॥

अन्वय

ब्रह्म ह इति सा उवाच, ब्रह्मणः वै एतद्विजये महीयध्वम् इति ततः एव विदाञ्चकार ब्रह्म ह। इति।

अर्थ

(तुम्हारा अहंकार नष्ट करने के लिए) **ब्रह्म**- परमात्मा **ह**- ही (यक्षरूप से प्रकट हुए) थे **इति**- ऐसा **सा**- उमा देवी ने **उवाच**- कहा।

ब्रह्मणः- परमात्मा की **वै**- ही **एतद्विजये**- असुरों पर विजय होने पर (तुम सब) **महीयध्वम्**- सम्मानित हुए थे **इति**- ऐसा भी उमा ने कहा। **ततः**- उमा के उपदेश से **एव**- ही (इन्द्र ने) **विदाञ्चकार**- जाना (कि) यक्षरूपधारी **ब्रह्म**- परमात्मा **ह**- ही थे। **इति।**

भाष्यम्

ब्रह्मेति ....महीयध्वम् इति- *ब्रह्मैव यक्षरूपेण युष्मन्मोहशमनाय प्रादुर्भूतम्। अतो*[1] *ब्रह्मसम्बन्धिनि विजये निमित्ते पूजां प्राप्नुत। अस्माभिरेव विजयः कृत इति दुरभिमानः त्यक्तव्य इत्यर्थः।* ***ततो......ब्रह्मेति***-*तदुपदेशादेव ब्रह्मेति ज्ञातवान् इत्यर्थः।*

व्याख्या

उमा द्वारा इन्द्र को उपदेश

ब्रह्मेति...... देवी उमा ने इन्द्र से कहा कि तुम सब का मोह नष्ट करने के लिए भगवान् ही यक्षरूप से प्रकट हुए थे, भगवान् की इस विजय के कारण ही तुम सब सम्मानित हुए थे अतः हम देवताओं ने ही विजय प्राप्त की है, ऐसा दुरभिमान छोड़ देना चाहिए। **ततो.......ब्रह्मेति**- यक्षरूप को धारण करने वाले भगवान् ही थे, ऐसा उमा के उपदेश से ही इन्द्र ने जाना।

परम कृपालु भगवान् ने यक्षरूप में प्रकट होकर पहले वायु और अग्नि का गर्व नष्ट किया तत्पश्चात् इन्द्र को वास्तविक ज्ञान देने के लिए उमा को प्रेरित किया। इन्हीं से देवराज को ज्ञान प्राप्त हुआ।

द्वितीयो मन्त्रः

तस्माद्वा एते देवा अतितरामिवान्यान् देवान् यदग्निर्वायुरिन्द्रः।
ते ह्येनन्नेदिष्ठं पस्पृशुः। ते ह्येनत् प्रथमो विदाञ्चकार ब्रह्मेति ॥ 2 ॥

टिप्पणी- 1. अत्र सप्तम्यर्थे सार्वविभक्तिकतसिः।

अन्वय

यद् अग्नि: वायु: इन्द्र: हि ते नेदिष्ठम् एनत् पस्पृशु: हि ते प्रथम: विदाञ्चकार एनत् ब्रह्म तस्मात् वै एते देवा: अन्यान् देवान् अतितराम् इव इति।

अर्थ

यद्- जो **अग्नि: वायु: इन्द्र:**- अग्नि, वायु और इन्द्र देवता हैं **हि**- क्योंकि **ते**- उन्होंने **नेदिष्ठम्**- समीप में विद्यमान **एनत्**- यक्षरूपध री परमात्मा को **पस्पृशु:**- देखा (और) **हि**- क्योंकि **ते**- उन्होंने **प्रथम:**- प्रथम **विदाञ्चकार**- जाना कि **एनद्**- ये यक्षरूप धारण करने वाले **ब्रह्म**- परमात्मा हैं, **तस्मात्**- उस कारण **वै**- ही **एते**- ये **देवा:**- देवता **अन्यान्**- अन्य **देवान्**- देवताओं से अतितराम्- बढ़कर इव- ही हैं।

भाष्यम्

तस्माद्वा एते देवा अतितरामिवान्यान् देवान् यदग्निर्वायुरिन्द्र:। ते ह्येनन्नेदिष्ठं पस्पृशु:। ते ह्येनत् प्रथमो विदाञ्चकार ब्रह्मेति- *तस्मादेव हेतो: एत एवाग्निवाय्विन्द्रा इतरान् देवान् अतिशेरत इव। इवशब्द एवार्थ:। अतिशेरत एवेत्यर्थ:। यस्माद् हेतो:* ***नेदिष्ठं***-*समीपे वर्तमानं तद् ब्रह्म* ***पस्पृशु:***-*दृष्टवन्त:। यतश्च हेतो:* ***प्रथमो विदाञ्चकार ब्रह्मेति***-*प्रथमास्सन्तो ब्रह्मेति विदाञ्चक्रु:, अत एवैते देवान्तरापेक्षया अग्निवाय्विन्द्रा: अतिशयितवन्त इत्यर्थ:। वचनव्यत्यश्छान्दस:।2।*

व्याख्या

अग्नि, वायु और इन्द्र की श्रेष्ठता

तस्माद्वा ....ब्रह्मेति- उस कारण ही अग्नि, वायु और इन्द्र ये तीनों देवता अन्य देवताओं से बढ़कर ही हैं। मन्त्र में आया इव शब्द एव

के अर्थ में है। बढ़कर ही हैं, यह अतिशेरत इव का अर्थ है। जिस कारण अग्नि आदि देवताओं ने **नेदिष्ठम्**- समीप में विद्यमान उस ब्रह्म को **पस्पृशुः**-देखा और जिस कारण **प्रथमो....ब्रह्मेति**-अग्नि आदि देवताओं ने प्रथम होते हुए (अन्य देवताओं की अपेक्षा प्रथम) 'यक्षरूपधारी ब्रह्म थे,' ऐसा जाना इसलिए अग्नि, वायु और इन्द्र ये तीनों देवता अन्य देवताओं की अपेक्षा श्रेष्ठ हैं। 'प्रथमः' और 'विदाञ्चकार' यहाँ बहुवचन के स्थान पर एकवचन का प्रयोग छान्दस है।

देवताओं में अग्नि, वायु और इन्द्र ये तीन देवता श्रेष्ठ हैं क्योंकि इन तीनों ने यक्षरूप में प्रकट परमात्मा का दर्शन किया और उनके समीप भी गये। अग्नि और वायु ने उनके साथ संभाषण भी किया। इन्द्र को संभाषण का अवसर नहीं मिला क्योंकि तब तक भगवान् अन्तर्धान हो गये थे किन्तु इन्द्र को साक्षात् माता उमा के उपदेश से ब्रह्म का ज्ञान हुआ। अग्नि और वायु को इन्द्र के उपदेश से ब्रह्म का ज्ञान हुआ। इस प्रकार इन तीनों ने अन्य देवताओं की अपेक्षा पहले ब्रह्म को जाना।

तृतीयो मन्त्रः

तस्माद् वा इन्द्रोऽतितरामिवान्यान् देवान्।
स ह्येनन्नेदिष्ठं पस्पर्श।
स ह्येनत् प्रथमो विदाञ्चकार ब्रह्मेति॥ 3 ॥

अन्वय

हि सः नेदिष्ठम् एनत् पस्पर्श, हि सः प्रथमः एनत् ब्रह्म इति विदाञ्चकार, तस्मात् वै इन्द्रः अन्यान् देवान् अतितराम् इव।

अर्थ

हि- क्योंकि **सः**- इन्द्र ने **नेदिष्ठम्**- समीप में विद्यमान **एनत्**-

यक्षरूपधारी परमात्मा को **पस्पर्श**- देखा (और) **हि**- क्योंकि **सः**- इन्द्र ने **प्रथमः**- सब देवों से पहले **एनत्**- यक्ष को **ब्रह्म**- ब्रह्म **इति**- ऐसा **विदाञ्चकार**- जाना **तस्मात्**- उस कारण **वै**- ही **इन्द्रः**- देवराज इन्द्र **अन्यान्**- अन्य **देवान्**- सभी देवताओं से **अतितराम्**- श्रेष्ठ **इव**- ही है।

भाष्यम्

तस्माद् वा इन्द्रोऽतितरामिवान्यान् देवान्। स ह्येनन्नेदिष्ठं पस्पर्श। स ह्येनत् प्रथमो विदाञ्चकार ब्रह्मेति- *अग्निवाय्विन्द्राणां मध्ये यस्मादिन्द्रः सन्निहितं ब्रह्म दृष्टवान्, सर्वेभ्यः पुरस्तात् पार्वतीमुखात् इदं ब्रह्मेति ज्ञातवान्, अतः सर्वातिशायीत्यर्थः।3।*

व्याख्या

इन्द्र की सर्वश्रेष्ठता

तस्माद् वा......- क्योंकि अग्नि, वायु और इन्द्र के मध्य में इन्द्र ने भी निकट में विद्यमान ब्रह्म को देखा और सर्वप्रथम उमा के मुखारविन्द से 'यह ब्रह्म है' इस प्रकार यक्षरूपधारी ब्रह्म को जाना, इसलिए इन्द्र सर्वश्रेष्ठ है।

इन्द्र ने अग्नि और वायु से भी पहले साक्षात् पार्वती के वचन से ब्रह्म को समझा, इस कारण उसकी महिमा सबसे अधिक है।

चतुर्थो मन्त्रः

तस्यैष आदेशो यदेतद् विद्युतो व्यद्युतदा इति
इन्न्यमीमिषदा इत्यधिदैवतम्[1] ॥ 4 ॥

अन्वय

तस्य यद् एषः आदेशः इति आ विद्युतः व्यद्युतद् इत् आ

टिप्पणी- 1. देवतासु इति स्वार्थेऽण्, विभक्त्यर्थेऽव्ययीभावः।

न्यमीमिषत् अधिदैवतम् इति।

अर्थ

तस्य- ब्रह्म का(ब्रह्म के विषय में) **यद्**- उमा के द्वारा किया जाने वाला **एषः**- यह **आदेशः**- उपदेश **इति**- इस प्रकार है। **आ**-प्रसिद्ध **विद्युतः**- विद्युत् के **व्यद्युतद्**- प्रकाशित होने (के समान ब्रह्म का प्राकट्य) है **इत्** और **आ**-प्रसिद्ध **न्यमीमिषत्**[1]- पलक झपकने के (समान ब्रह्म का तिरोधान) है, यह **अधिदैवतम्**[2]- विद्युत्देवताविषयक (ब्रह्म का) उपदेश है।

भाष्यम्

तस्यैष आदेशः। ***तस्य***-*आविर्भूतस्य सद्यस्तिरोभूतस्य ब्रह्मण* ***एष आदेशः***-*वक्ष्यमाण उपमानोपदेश इत्यर्थः।* ***यदेतद् विद्युतो व्यद्युतदा इति***-*यथा विद्युतो विद्योतनं क्षणिकम्, तद्वदित्यर्थः।* ***आ*** *इति प्रसिद्धौ। उपमानान्तरम् आह-* ***इन्न्यमीमिषदा*** *इति अत्रापि* ***आ*** *इत्येतत् पूर्ववत्। इच्छब्दः उपमानान्तरसमुच्चयार्थः। यथा* ***न्यमीमिषद्*** *निमेषः प्रकाशतिरोभावः क्षणेन, एवं ब्रह्माऽपि तिरोभूत् इत्यर्थः। यथा विद्युतस्तिरोहिता भवन्तीत्यर्थः। न्यमीमिषदिति वचनव्यत्ययश्छान्दसः।* ***इत्यधिदैवतम्***-*अनात्मभूताकाशादिगतविद्युद्विषयं ब्रह्मण उपमानदर्शनमुक्तमित्यर्थः।4।*

व्याख्या

तस्यैष आदेशः- तस्य-आविर्भूत होने वाले और शीघ्र अन्तर्हित

टिप्पणी- 1. कुछ विद्वान् आँख की पलक का झपकना अर्थ करते हैं, वह उचित नहीं क्योंकि यहाँ अधिदैवत का प्रकरण है, अध्यात्म का नहीं।

2. अनात्मभूताकाशगतविद्युद्विषयं ब्रह्मणः उपमानदर्शनम् उक्तम्। (प्रति)

होने वाले ब्रह्म का **एषः आदेशः**-आगे कहे जाने वाले उपमान(विद्युत) के द्वारा यह उपदेश है, यह अर्थ है। **यदेतद्**-जैसे आकाश में विद्युत का चमकना क्षणिक होता है, वैसे ही यक्षरूपधारी ब्रह्म का प्राकट्य भी अल्पकाल स्थायी रहा। आङ् उपसर्ग प्रसिद्धि अर्थ में है। अब अन्य उपमान को कहते हैं- **इन्न्यमीमिषदा इति।** यहाँ भी आङ् उपसर्ग पूर्व के समान प्रसिद्धि अर्थ में है। इत् शब्द अन्य उपमान का संग्रह करने के लिए है। जैसे **न्यमीमिषत्**- पलक का झपकना अर्थात् प्रकाश का अन्तर्धान होना, वह एक क्षण में होता है, इसी प्रकार ब्रह्म भी अदृश्य हो गया। जैसे बिजलियों का तिरोधान शीघ्र ही हो जाता हैं, वैसे ही यक्षरूप धारी भगवान् का भी शीघ्र अदर्शन हो गया, यह अर्थ है। 'विद्युतः' इस बहुवचनान्त पद का अन्वय 'न्यमीमिषत्' इस पद के साथ भी होता है अतः यहाँ भी बहुवचन होना चाहिए किन्तु यहाँ एकवचन का प्रयोग छान्दस है। आकाश में विद्यमान अनात्मरूप विद्युत्देवताविषयक(विद्युत्देवता से सम्बन्ध रखने वाला) ब्रह्म का उपमान से उपदेश कहा गया।

अध्यात्म उपदेश वक्ष्यमाण मन्त्र से किया जायेगा, यहाँ उससे भिन्न अधिदैवत उपदेश किया जा रहा है। आकाश में विद्यमान विद्युत् देवता[1] है। वह अपनी आत्मा से भिन्न अनात्मरूप है, उस देवता को विषय करने वाला ब्रह्म का उपदेश विद्युत् देवतारूप उपमान से किया गया, यह 'इत्यधिदैवतम्' का अर्थ है। जिसके द्वारा उपमा दी जाती है, उसे उपमान कहते हैं। जैसे - विद्युत् से भगवान् की उपमा देने पर विद्युत् उपमान होती है। उमा के द्वारा किया गया जो ब्रह्म का उपदेश है, उस उपदेश का विषय ब्रह्म है। **तस्यैष आदेशः** का ऐसा ही अर्थ किया गया है किन्तु अधिदैवतम् का अर्थ करते समय विद्युत् देवता को विषय कहा, यह कैसे सम्भव है? उक्त मन्त्र में वर्णित विद्युत् और ब्रह्म में उपमान - उपमेय भाव है, इनमें विद्युत उपमान है और ब्रह्म उपमेय है। उपमान और

टिप्पणी - 1. देवता तु अत्र बाह्यभूतरूपा विद्युदेव (आ.भा.)।

उपमेय के द्वारा किये जाने वाले उपदेश के विषय विद्युत् और ब्रह्म ये दोनों ही हैं, इनमें उपमानरूप से विषय विद्युत् है और उपमेयरूप से विषय ब्रह्म है इसलिए **तस्यैष आदेशः** का अर्थ करते समय ब्रह्म को विषय कहना और अधिदैवतम् का अर्थ करते समय विद्युत् देवता को विषय कहना संभव होता है।

पञ्चमो मन्त्रः

अथाध्यात्मं यदेतद् गच्छतीव च मनो न[1]
चैतदु[2]पस्मरत्यभीक्ष्णं सङ्कल्पः ॥ 5 ॥

अन्वय

अथ अध्यात्मम् एतद् यद्, मनः गच्छति इव च सङ्कल्पः एतद् अभीक्ष्णम् न उपस्मरति च।

अर्थ

अथ - अधिदैवत उपदेश के पश्चात् **अध्यात्मम्[3]**- अध्यात्म (मन उपमान (दृष्टान्त) से ब्रह्म) का उपदेश किया जाता है। **एतद्**- परब्रह्म के प्रति **यत्**- जो **मनः**- मन **गच्छति इव**- जाता जैसा है **च**- और **सङ्कल्पः**-ध्यानविशेष **एतद्**- इस परब्रह्म को **अभीक्ष्णम्**- चिरकाल तक (निरन्तर) **न उपस्मरति**- विषय नहीं करता।

भाष्यम्

अथाध्यात्मम्**- अनन्तरं देहस्थो दृष्टान्त उच्यत इत्यर्थः। **यदेतद्

टिप्पणी - 1. मनोऽनेन इति पाठान्तरः।
2. चैनदु इति पाठान्तरः।
3. आत्मनि इति अध्यात्मम्। आत्मशब्दः शरीरवत् शरीररन्तःस्थ (मनो) वाची (आ.भा.)।

गच्छतीव च मनः-एतद् ब्रह्म मनो गच्छतीव। ब्रह्मविषयकमनोगमनमिवेत्यर्थः। यथा मनसो ब्रह्मविषयीकरणं न चिरस्थायि, एवमेव यक्षस्य ब्रह्मणः प्रकाशोऽपीत्यर्थः। मनसा ब्रह्मविषयीकरणं क्षणिकमेव, न चिरानुवृत्तम् इति दर्शयति- **न चैतदुपस्मरत्यभीक्ष्णं सङ्कल्पः**- न हि मनोजनित**संकल्पो**-ध्यानविशेषः। **अभीक्ष्णम्**- चिरम् एतद् ब्रह्मोपस्मरति, न विषयीकरोतीत्यर्थः। ततः च यथा ब्रह्मणो मनसा विषयीकरणं न चिरानुवृत्तम्, एवं यक्षस्य ब्रह्मणः प्रादुर्भावोऽपि न चिरानुवृत्तः। अत्र दृष्टान्तोक्तिव्याजेन 'ब्रह्मध्यानानुवृत्तिर्दुःशका' इति दर्शितं भवति।

व्याख्या

परमात्मा का ध्यान कठिन

अथाध्यात्मम्- अधिदैवत उपदेश के पश्चात् देह में स्थित मन को दृष्टान्त कहा जाता है। **यदेतत्......मनः। एतत्**-ब्रह्म में मन जाता जैसा है। ब्रह्मरूप विषय में मन के जाने के समान, यह **यदेतद् गच्छतीव च मनः** इस वाक्य का अर्थ है। जैसे ब्रह्म को विषय करनारूप मन का कार्य दीर्घ काल तक नहीं रहता, इसी प्रकार यक्षरूप ब्रह्म का प्रादुर्भाव भी दीर्घकालस्थायी नहीं रहा। मन के द्वारा ब्रह्म को विषय करना क्षणिक ही होता है, चिरकालस्थायी नहीं होता, इस विषय को अब कहते हैं-**न चैतत् ....संकल्पः**- क्योंकि मन से होने वाला **सङ्कल्पः**- ध्यानविशेष **अभीक्ष्णम**- दीर्घकाल तक इस ब्रह्म का उपस्मरण नहीं करता अर्थात् ध्यानविशेष दीर्घकाल तक इस ब्रह्म को विषय नहीं करता और ब्रह्म को विषय करना क्षणिक होने से जिस प्रकार मन के द्वारा ब्रह्म को विषय करना देर तक नहीं होता, उसी प्रकार यक्षरूपधारी ब्रह्म का प्राकट्य भी देर तक नहीं हुआ। 'ब्रह्म के ध्यान की निरन्तरता बनाये रखना कठिन कार्य है' यह बात दो दृष्टान्तों के वर्णन के बहाने से ज्ञात होती है।

आचार्य के उपदेश से परमात्मा का ज्ञान होने के पश्चात् सतत् उनका स्मरण करना चाहिए किन्तु मन परब्रह्म में जाता जैसा है अर्थात् मन कभी परमात्मा का ध्यान करता है, कभी नहीं करता। मन चंचल है इसलिए जैसे मन दीर्घकाल तक परमात्मा को विषय नहीं करता है , वैसे ही यक्षरूप परमात्मा का आविर्भाव भी अल्पकाल के लिए हुआ। मन को परमात्मा में लगाने पर भी अनादि विषयवासनाओं से दूषित होने के कारण वह एक क्षण लगकर फिर सहसा वहाँ से हटकर अन्यत्र चला जाता है। मन दृष्टान्त से यह स्पष्ट होता है कि ब्रह्म का निरन्तर ध्यान करना कठिन है।

षष्ठो मन्त्रः

तद्ध तद्वनं नाम तद्वनमित्युपासितव्यम्।
स य एतदेवं वेद, अभि हैनं सर्वाणि भूतानि संवाञ्छन्ति ॥ 6 ॥

अन्वय

तत् ह तद् वनम् नाम, तत् वनम् इति उपासितव्यम्। यः सः एवम् एतद् वेद। एनम् सर्वाणि भूतानि ह अभिसंवाञ्छन्ति।

अर्थ

तत्- पूर्वोक्त महिमा से विशिष्ट **ह**- प्रसिद्ध **तत्**- ब्रह्म **वनम्**- वन **नाम**- नामवाला है, इसलिए **तत्**- ब्रह्म **वनम्**- वन है **इति**- इस प्रकार **उपासितव्यम्**- उपासना करनी चाहिए। **यः**- जो **सः**- प्रसिद्ध उपासक **एवम्**- इस प्रकार **एतद्**- ब्रह्म की **वेद**- उपासना करता है। **एनम्**- इस उपासक को **सर्वाणि**- सभी **भूतानि**- प्राणी **ह**- अवश्य **अभिसंवाञ्छन्ति** - भलीभाँति चाहते हैं।

भाष्यम्

तद्ध तद्वनं नाम तद्वनमित्युपासितव्यम्- *एतादृशमहिमविशिष्टं*

तत् ब्रह्म सर्वैरपि जनैर्वननीयत्वेन-प्रार्थनीयत्वेन वननामकं भवति। तस्मात् **तद्**- ब्रह्म वनमित्युपासितव्यमित्यर्थः। वनत्वेनोपासनस्य फलमाह-**स य... .....संवाञ्छन्ति।** सर्वैरपि प्रार्थनीयो भवतीत्यर्थः।

व्याख्या

ब्रह्म की उपासना का प्रकार

सांसारिक विषयों में मन सहजरूप से जाता है, उनमें रुकता भी है किन्तु परमात्मा में मन कठिनाई से जाता है और जाने पर रुकता नहीं। वह इन विषयों जैसा नहीं है अपितु सबसे विलक्षण है। **तद्ध** ...... प्रस्तुत उपनिषत् में वर्णित प्रेरकत्व तथा सर्वसामर्थ्यादि विशेषताओं से युक्त वह ब्रह्म सभी साधकों के द्वारा वननीय अर्थात् प्रार्थनीय होने से वन नाम वाला होता है, अतः 'ब्रह्म वन है' इस प्रकार उसकी उपासना करनी चाहिए, यह मन्त्र के पूर्वार्ध का अर्थ है। अब श्रुति वनत्वेन(प्रार्थनीयत्वेन) ब्रह्म की उपासना के फल को कहती है-**स यः....**- जो उपासक वनत्वेन ब्रह्मोपासना करता है, वह सब का प्रीतिपात्र होकर सबके द्वारा प्रार्थनीय हो जाता है अर्थात् 'यह हमारा कल्याण करने वाला है' इस भाव से उसे सभी प्राणी चाहते हैं, यह मन्त्र के उत्तरार्ध का अर्थ है।

सप्तमो मन्त्रः

उपनिषदं भो ब्रूहीति। उक्ता त उपनिषत्। ब्राह्मीं
वाव त उपनिषदमब्रूमेति॥ 7 ॥

अन्वय

भो! उपनिषदं ब्रूहि इति, ते उपनिषत् उक्ता वाव ते ब्राह्मीम् उपनिषदम् अब्रूम इति।

अर्थ

भो- हे आचार्य! **उपनिषदम्**- उपनिषत् को **ब्रूहि**- कहिए। **इति**- ऐसा शिष्य के द्वारा कहने पर आचार्य कहते हैं कि **ते**- आपको

उपनिषत्-प्रधान उपनिषत् **उक्ता वाव**- कह ही दी (और अब) **ते**- आपके लिए **ब्राह्मीम्**-साधन की प्रतिपादक **उपनिषदम्**- उपनिषद् को **अब्रूम**- कहूँगा।

भाष्यम्

*एवम् **आत्मना विन्दते वीर्यम्**(के.उ.2.4) इत्यर्थे स्थिते सति वीर्यावाप्तिहेतुभूतभगवदनुग्रहसाधनप्रतिपादिकाम् उपनिषदं पृच्छति-**उपनिषदं भो ब्रूहीति**। इतर आह **उक्ता**..........। ब्रह्मप्रतिपादिकां प्रधानोपनिषदमवोचाम, अतः प्रधानोपनिषदुक्तैव। साधनप्रतिपादिका-ञ्चोपनिषदं वक्ष्यामि, यदि शुश्रूषसे इति भावः।*

व्याख्या

भगवदनुग्रह की साधक उपनिषत्

इस प्रकार उपदेश को प्राप्त शिष्य 'भगवदनुग्रह से मन की एकाग्रतारूप सामर्थ्य प्राप्त होता है' यह अर्थ मन में स्थित होने पर उस सामर्थ्य की प्राप्ति का हेतु जो भगवदनुग्रह है, उसके साधन की प्रतिपादक उपनिषत् को पूँछता है-हे आचार्य मुझे उपनिषत् का उपदेश कीजिए। आचार्य कहते हैं-**उक्ता**.....-ब्रह्म का प्रतिपादन करने वाली प्रधान उपनिषत् का उपदेश मैंने कर दिया इसलिए प्रधान उपनिषत् मेरे द्वारा कही ही गयी और यदि तुम सुनना ही चाहते हो तो मन की एकाग्रता के साधन के प्रतिपादक उपनिषत् को कहूँगा, यह भाव है।

उपनिषत् शब्द का अर्थ है-रहस्य। मोक्ष का साधन ब्रह्मविद्या परम रहस्य है। **विद्यया विन्दतेऽमृतम्**(के.उ.2.4) इस प्रकार मोक्ष का साधन ब्रह्मविद्यारूप उपनिषत् का वर्णन किया गया। इस विद्या के विषय ब्रह्म का **श्रोत्रस्य श्रोत्रम्** इस प्रकार आरम्भ से ही वर्णन आरम्भ करके उत्तरोत्तर विस्तार से प्रतिपादन किया गया, अतः शिष्य का प्रश्न इस ब्रह्मविद्या के विषय में नहीं हो सकता। इस विद्या की निष्पत्ति एकाग्र मन

के होने पर ही होती है अत: **आत्मना विन्दते वीर्यम्** (के.उ.2.4) इस प्रकार मन की एकाग्रतारूप सामर्थ्य का हेतु श्रीभगवान् का अनुग्रह कहा गया, उसका साधन क्या है? इस प्रकार जिज्ञास्य भगवदनुग्रह के साधन का प्रतिपादन करने वाला रहस्यरूप उपनिषत् शिष्य के द्वारा पूँछा गया है, यह बात वक्ष्यमाण 4.8 मन्त्र से स्पष्ट है। वहाँ भगवदनुग्रह के साधन तप आदि का प्रतिपादन किया गया है। भाष्यगत साधन पद फल का भी उपलक्षण है, उसका आगे 4.9 मन्त्र में वर्णन किया गया है। सभी साधकों में अनुग्रह न देखा जाने से उसके कारण को भी जानना आवश्यक है, इस अभिप्राय से शिष्य प्रश्न करता है। ऐसा होने पर भी प्रधान ब्रह्मविद्या के अतिशय महत्त्व को प्रदर्शित करने के लिए **उक्ता त उपनिषत्** इस प्रकार पहले आचार्य ने उत्तर दिया। इसके पश्चात् शिष्य के जिज्ञास्य विषय को कहते हैं - **ब्राह्मीं वाव त उपनिषदमब्रूमेति**।

अष्टमो मन्त्रः

तस्यै तपो दमः कर्मेति प्रतिष्ठा।
वेदाः सर्वाङ्गानि सत्यमायतनम्॥ 8 ॥

अन्वय

तस्यै तपः दमः कर्म इति प्रतिष्ठा, वेदाः सर्वाङ्गानि सत्यम् आयतनम्।

अर्थ

तस्यै- ब्रह्मविद्या के लिए **तपः**- तप, **दमः**- दम (और) **कर्म**- कर्म हैं **इति**- ये तीनो (ब्रह्मविद्या की) **प्रतिष्ठा**- दृढ़ता के हेतु हैं। **वेदाः**- चारों वेद, **सर्वाङ्गानि**- उसके छः अङ्ग (और) **सत्यम्**- सत्यभाषण **आयतनम्**- (ब्रह्मविद्याकी) उत्पत्ति के कारण हैं।

भाष्यम्

तस्यै तपो दमः कर्मेति प्रतिष्ठा। तस्यै-उक्तायै उपनिषदे। साधनभूतानि कायशोषणलक्षणं तपः, इन्द्रियनिग्रहरूप उपशमः, अग्निहोत्रादिलक्षणं कर्म चोपनिषच्छब्दितताया ब्रह्मविद्यायाः **प्रतिष्ठा**-दार्ढ्यहेतुः। **वेदाः सर्वाङ्गानि सत्यमायतनम्**- षडङ्गसहिताश्च वेदाः सत्यवदनञ्च ब्रह्मविद्योत्पत्तिकारणम् इत्यर्थः।8।

व्याख्या

ब्रह्मविद्या की उत्पत्ति तथा दृढ़ता के कारण

तस्यै......-उक्त उपनिषत् के लिए तप, दम और कर्म हैं, ये तीनों उसकी दृढता के साधन हैं। **तस्यै** पद का अर्थ है-उक्त उपनिषत् के लिए। शास्त्रीय रीति से देह को सुखानारूप तप, इन्द्रियनिग्रहरूप दम और अग्निहोत्रादिरूप नित्य-नैमित्तिक कर्म उपनिषत् के साधन हैं, वे उपनिषत् शब्द से कही गयी ब्रह्मविद्या की दृढता के कारण हैं। छः अङ्गों के सहित वेद और सत्यभाषण ब्रह्मविद्या की उत्पत्ति के कारण हैं।

तप आदि तीनों ब्रह्मविद्या की दृढता में हेतु हैं, इनके अनुष्ठान से अन्तःकरण की निर्मलता होने पर विद्या उत्तरोत्तर दृढ होती चली जाती है किन्तु ब्रह्मविद्या की उत्पत्ति होने पर ही उसकी स्थिरता के हेतु तप आदि का अनुष्ठान संभव है, इस कारण विद्या की उत्पत्ति के कारण कहे जाते हैं- वेद, उसके छः अङ्ग और सत्यभाषण। वेद चार हैं - ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद। वेद के छः अङ्ग हैं - शिक्षा, कल्प, निरुक्त, ज्योतिष, छन्द और व्याकरण। जैसा अनुभव किया गया, प्राणियों का कल्याणकारी वैसा ही वचन बोलना सत्यभाषण कहलाता है। दूसरों को बोध कराने के लिए वचन बोला जाता है, वह यदि वंचना करने वाला न हो और बोध कराने में समर्थ हो तो सत्यवचन है, वह सभी प्राणियों के हित के लिए प्रवृत्त होता है। **न हि सत्यात् विद्यते परम्** (म.

भा.शां.109.4) इस प्रकार महाभारत में सत्यभाषण की बहुत प्रशंसा की गयी है। सत्यभाषण में प्रमाद नहीं करना चाहिए - **सत्यान्न प्रमदितव्यम्** (तै.उ.1.11.1) सत्य संभाषण करते हुए साङ्गवेदों का अध्ययन करके कर्म तथा ब्रह्मरूप वेदार्थ का निश्चय करके फलाभिसन्धिरहित कर्मों का अनुष्ठान करते हुए इन्द्रियनिग्रह करके तपश्चर्या (करते हुए मनन, निदिध्यासन)से दर्शनसमानाकार ब्रह्मविद्या को निष्पन्न करना चाहिए, यह भाव है। प्रस्तुत मन्त्र में उत्तरोत्तर कर्तव्य साधन का पूर्वपूर्व में निर्देश किया गया है। प्रस्तुत मन्त्र में तपादि ब्रह्मविद्या की उत्पत्ति और दृढता के साधन कहे गये हैं, वही पूर्व मन्त्र के भाष्य में भगवदनुग्रह के साधन कहे गये हैं, उनका अनुष्ठान करने से वे भगवदनुग्रह के द्वारा ब्रह्मविद्या की उत्पत्ति और दृढता के कारण होते हैं, ऐसा जानना चाहिए।

नवमो मन्त्रः

यो वा एतामेवं वेद अपहत्य पाप्मानमनन्ते।
स्वर्गे लोके ज्येये प्रतितिष्ठति प्रतितिष्ठति॥ 9 ॥

अन्वय

यः वै एवम् एताम् वेद, पाप्मानम् अपहत्य ज्येये अनन्ते स्वर्गे लोके प्रतितिष्ठति प्रतितिष्ठति।

अर्थ

यः- जो **वै**- निश्चित रूप से **एवम्**- उत्पत्ति और दृढ़ता के हेतुओं सहित **एताम्**- ब्रह्मविद्या को **वेद**- जानता है, वह **पाप्मानम्**- समस्त पापों को **अपहत्य**- नष्ट करके **ज्येये**- सर्वश्रेष्ठ **अनन्ते**- अविनाशी **स्वर्गे लोके**- भगवद्धाम में **प्रतितिष्ठति**- स्थित होता है, **प्रतितिष्ठति**- स्थित होता है।

भाष्यम्

यो वा एतामेवं वेद - एतां ब्रह्मविद्याम् उक्तविधप्रतिष्ठायतनोपेतां यो वेद। **अपहत्य पाप्मानमनन्ते स्वर्गे लोके ज्येये प्रतितिष्ठति प्रतितिष्ठति**- स सर्वाणि पापानि विधूय कालपरिच्छेदशून्ये **ज्येये**-ज्यायसि ज्येष्ठे सर्वोत्तरे **स्वर्गे लोके**- वैकुण्ठे लोके प्रतिष्ठितो भवतीत्यर्थः। अनन्तज्येयपदसमभिव्याहारात् स्वर्गलोकशब्दो भगवल्लोकपरः।

व्याख्या

फल

यो वा एताम्.....-जो उक्त रीति से उत्पत्ति और दृढता के कारणसहित इस ब्रह्मविद्या को जानता है। **अपहत्य.......प्रतितिष्ठति**-वह सभी पापों को छोड.कर कालपरिच्छेद से रहित **ज्येये**-ज्यायान् या ज्येष्ठ अर्थात् सब से पर **स्वर्गे लोके**-वैकुण्ठ लोक में स्थित होता है। अनन्त और ज्येय पदों के साथ(स्वर्गलोक शब्द का) उच्चारण होने से स्वर्गलोक शब्द भगवल्लोक का वाचक है।

प्रस्तुत केनोपनिषत् (1.2 और 2.5) में **प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति** इस प्रकार ब्रह्मोपासकों का इस लोक से जाकर मुक्त होना कहा गया है। उनका गन्तव्य स्थान प्रस्तुत मन्त्र में **अनन्ते स्वर्गे लोके ज्येये** इस प्रकार कहा जाता है। स्वर्ग शब्द परमात्मा के लोक त्रिपादविभूति का वाचक है। जिसे वैकुण्ठ, साकेत आदि शब्दों से अभिहित किया जाता है। इस मन्त्र में कालपरिच्छेद से रहित (अविनाशी) अर्थ का बोधक **अनन्ते** पद है और सर्वश्रेष्ठ अर्थ का बोधक **ज्येये** पद है। इन पदों के सामर्थ्य से यहाँ स्वर्ग लोक का अर्थ इन्द्रादि देवताओं का निवास स्थान नहीं है क्योंकि वह कालपरिच्छेद वाला है और त्रिपादविभूति की अपेक्षा निम्न कोटि का है। जो वस्तु एक काल में रहती है, दूसरे काल में नहीं रहती, वह कालपरिच्छेद से युक्त होती है, जैसे-घट, पटादि। देवलोक भी सृष्टि के पूर्व और प्रलय के पश्चात् नहीं रहता अतः वह भी कालपरिच्छेद से

युक्त है किन्तु अप्राकृत भगवद्धाम सदा रहता है इसलिए वह कालपरिच्छेद से रहित अर्थात् नित्य है। इसका नित्यत्व 'विशिष्टाद्वैत वेदान्त का विस्तृत विवेचन' ग्रन्थ में विस्तार से अवलोकनीय है। मुक्तात्माओं का निवास स्थान यही है। यहाँ आकर मुक्तात्मा का संसारचक्र में प्रवेश नहीं होता - **न च पुनरावर्तते, न च पुनरावर्तते** (छां.उ.8.15.1), **अनावृत्तिः शब्दादनावृत्तिः शब्दात्** (ब्र.सू.4.4.22)।

विद्या का फल मोक्ष होता है किन्तु यहाँ उसके ज्ञान का फल मोक्ष कहा गया है इसलिए साधनों के सहित ब्रह्मविद्या को जानकर उसके अनुष्ठान से जन्य दर्शनसमानाकार ब्रह्मविद्या के द्वारा मोक्ष प्राप्त होता है, ऐसा जानना चाहिए। **प्रतितिष्ठति प्रतितिष्ठति** इस प्रकार दो बार कथन ग्रन्थ की समाप्ति का सूचक है।

भाष्यम्

क्षेमाय या करुणया क्षितिनिर्जराणां भूमावजृम्भयत भाष्यसुधामुदारः।
वामागमाध्वगवदावदतूलवातो रामानुजस्स मुनिराद्रियतां मदुक्तिम्।।

इति श्रीमत्तातयार्यचरणारविन्दचञ्चरीकस्य वात्स्यानन्तार्यपाद-सेवासमधिगतशारीरकमीमांसाभाष्यहृदयस्य परकालमुनिपादसेवासमधिगतपारमहंसस्य श्रीरङ्गरामानुजमुनेः कृतिषु केनोपदिषद्भाष्यम्।

व्याख्या

जिन उदार महात्मा ने अनुग्रह करके मुमुक्षुओं के लिए पृथ्वी पर ब्रह्मसूत्रश्रीभाष्यरूप अमृत को प्रकट किया, वैदिकमार्ग से विपरीत मार्ग का अनुसरण करके वाद-विवाद करने वाले रुई के समान वादियों के लिये प्रचण्ड वायु के समान वे श्रीरामानुज स्वामी मेरी उपनिषद्व्याख्या का आदर करें।

श्रीमत्तातार्य के चरणकमलों के भ्रमर, वात्स्य अनन्ताचार्य के पादारविन्दों की सेवा से ज्ञात ब्रह्मसूत्रभाष्य का अभिप्राय वाले और

परकाल मुनि के श्रीचरणों की सेवा से संन्यासाश्रम में दीक्षित श्रीरङ्गरामानुजमुनि की कृतियों में केनोपनिषद्भाष्य समाप्त।

॥ भाष्य की व्याख्या समाप्त ॥

चतुर्थ खण्ड समाप्त

शान्तिपाठः

ॐ आप्यायन्तु ममाङ्गानि वाक्प्राणश्चक्षुःश्रोत्रमथो
बलमिन्द्रियाणि च सर्वाणि। सर्वं ब्रह्मौपनिषदम्।
माहं ब्रह्म निराकुर्याम्। मा मा ब्रह्मनिराकरोत्।
अनिराकरणमस्तु। अनिराकरणं मेऽस्तु। तदात्मनि निरते य
उपनिषत्सु धर्मास्ते मयि सन्तु। ते मयि सन्तु।
॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

केनोपनिषत् समाप्ता।
अनुग्रहेण सीतायाः रामस्य च मया कृता।
श्रीत्रिभुवनदासेन व्याख्या कृता मनोरमा।।1।।
कनकभवनाधीशः सीतया सह राजते।
समर्प्यते कृती रम्या तयोः पादारविन्दयोः।।2।।
।। इति ।।

परिशिष्ट

1. संकेताक्षरानुक्रमणिका

ई.उ.	–	ईशावास्योपनिषत्
के.उ.	–	केनोपनिषत्
गी.	–	गीता (श्रीमद्भगवद्गीता)
छां.उ.	–	छान्दोग्योपनिषत्
तै.उ.	–	तैत्तिरीयोपनिषत्
तै.ना.उ.	–	तैत्तिरीयनारायणोपनिषत्
बृ.उ.	–	बृहदारण्यकोपनिषत्
ब्र.सू.	–	ब्रह्मसूत्रम्
म.भा.शां.	–	महाभारतशान्तिपर्व
मु.उ.	–	मुण्डकोपनिषत्
श्वे.उ.	–	श्वेताश्वेतरोपनिषत्
श्रीभा.	–	श्रीभाष्यम्

2. मन्त्रानुक्रमणिका

परिशिष्ट- 2. मन्त्रानुक्रमणिका

3. प्रमाणानुक्रमणिका

परिशिष्ट- 3. प्रमाणानुक्रमणिका

मनो ब्रह्मेत्युपासीत	(छां. उ.3.18.1)	15
मनो ब्रह्मेत्युपासीत	(छां.उ.3.18.1)	16
यच्च किंचिज्जगत्यस्मिन्	(तै.ना.उ.94)	20
यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य	(तै.उ. 2.1.1)	24
यतो वाचो निवर्तन्ते, अप्राप्य	(तै.उ.2.9.1)	26
यस्तद् वेद यत् स वेद, स	(छां.उ.4.1.4)	16
विद्यया विन्दतेऽमृतम्	(के.उ.2.4)	54
सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म	(तै.उ. 2.1.1)	29
सत्यान्न प्रमदितव्यम्	(तै.उ.1.11.1)	57

4. ग्रन्थानुक्रमणिका

1. **आप्टे संस्कृतहिन्दीकोश**
नाग प्रकाशन दिल्ली सन–1988

2. **ईशावास्योपनिषत्**
तत्त्वविवेचनी हिन्दी व्याख्या सहित,
व्याख्याकार स्वामी त्रिभुवनदास,
चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान दिल्ली, सन् 2014

3. **उपनिषद्‌भाष्यम्**
श्रीरङ्गरामानुजमुनिविरचितम्, केनाद्युपनिषत्पुरुषसूक्तश्रीसूक्त-भाष्यम्, श्रीमदविभनवदेशिक वीरराघवाचार्य महादेशिक-विरचित परिष्कार उपनिषदर्थकारिकासहितम्, श्रीउत्तमूर वीरराघवाचार्य सेनेटरी ट्रस्ट चेन्नै सन 2003

4. **केनोपनिषत्**
तत्त्वविवेचनी हिन्दी व्याख्या सहित,
व्याख्याकार स्वामी त्रिभुवनदास, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान दिल्ली, सन् 2015

5. **केनोपनिषत्**
प्रतिपदार्थदीपिका–प्रकाशिका–आनन्द–सुबोधिन्याख्य-व्याख्याचतुष्टयसमेता संस्कृत संशोधन संसत् मेलुकोटे, सन् 1986

6. **तैत्तिरीय-ऐतरेय-छान्दोग्योपनिषत्**
श्रीरङ्गरामानुजमुनिविरचितम्, श्रीउत्तमूरवीरराघवाचार्य, 25 नाथमुनिवीथी ति. नगर चेन्नै. सन 2003

7. तैत्तिरीयोपनिषत्

(व्याख्याषट्कसमेता)संस्कृत संसोधन संसत् मेलुकोटे
सन 2005

8. विशिष्टाद्वैत वेदान्त का विस्तृत विवेचन

लेखक स्वामी त्रिभुवनदास, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान
दिल्ली, सन् 2013

केनोपनिषत् की प्रस्तुत व्याख्या में मन्त्र के पश्चात् अन्वय और मन्त्र के पदों का अर्थ प्रस्तुत है, जिससे सामान्य पाठकों को भी मन्त्रार्थ अत्यन्त सरलता से हृदयंगम हो सके। अर्थ के बाद गम्भीर, विस्तृत और मर्मस्पर्शी व्याख्या सन्निविष्ट है। विषयवस्तु को अवगत कराने के लिए इसे यथोचित शीर्षकों से सुसज्जित किया गया है। इसके अध्ययन से विषय अनायास ही हृदयपटलपर अंकित होता चला जाता है, पाठकगण इसका स्वयं अनुभव करेंगे। मन्त्र के यथाश्रुत अर्थ का बोध कराना ही हमारे व्याख्याकार स्वामीजी को अभीष्ट है, फिर भी कुछ स्थलों में अन्य मतों की समालोचना हुई है, जो कि प्रासङ्गिक है। ग्रन्थके अन्तमें परिशिष्ट भी दिये गये हैं, जिससे यह ग्रन्थ शोधकर्ताओं के लिए भी संग्राह्य हो गया है। हमारा विश्वास है कि हिन्दी माध्यम से उपनिषदों के अध्येता इस ग्रन्थ रत्नका आदर करेंगे।

व्याख्याकार की अन्य प्रकाशित कृतियाँ

* विशिष्टाद्वैत वेदान्त का विस्तृत विवेचन
* तत्त्वत्रयम् (तत्त्वविवेचनी हिन्दीव्याख्या)
* ईशावास्योपनिषत् (तत्त्वविवेचनी हिन्दीव्याख्या)
* कठोपनिषत् (तत्त्वविवेचनी हिन्दीव्याख्या)
* प्रश्नोपनिषत् (तत्त्वविवेचनी हिन्दीव्याख्या)

प्रकाशनाधीन

* मुण्डकोपनिषत् (तत्त्वविवेचनी हिन्दीव्याख्या)
* माण्डूक्योपनिषत् (तत्त्वविवेचनी हिन्दीव्याख्या)
* तैत्तिरीयोपनिषत् (तत्त्वविवेचनी हिन्दीव्याख्या)
* ऐतरेयोपनिषत् (तत्त्वविवेचनी हिन्दीव्याख्या)
* श्रीमद्भगवद्गीता (हिन्दीव्याख्या)
* अर्थपञ्चक (व्याख्या)
* उपासना दर्पण (सम्पादन व व्याख्या)

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान
दिल्ली